गीतांजली

रबीन्द्रनाथ टैगोर की अमर कृति

हिंदी: सत्यकाम विद्यालंकार

1960

गीताञ्जलि

[विश्वकवि रवीन्द्र की अमर कृति]

सत्यकाम विद्यालंकार द्वारा अनुवादित

राजपाल एण्ड सन्ज • नई सड़क दिल्ली

वक्तव्य

विश्व कवि रवीन्द्र ने अपनी मातृभाषा बंगाली में अगणित गीत लिखे थे। उनका संग्रह 'नैवेद्य' 'खेया' 'गीतांजलि' आदि नामक पुस्तकों में किया गया था। बाद में श्री एन्ड्रूज की प्रेरणा से कवि ने स्वयं १०३ गीतों का संकलन किया और उनका अंग्रेजी भाषा में रूपान्तर करके 'नोबल-प्राइज-कमेटी' को भेज दिया। अंग्रेजी की गीतांजलि उन्हीं १०३ गीतों का संग्रह है। इसी संग्रह पर कवि को 'नोबल-प्राइज़'—पुरस्कार मिला। इस पुरस्कार का मूल्य मुद्रा के रूप में यद्यपि केवल ८००० पौण्ड है किन्तु, विश्वविख्याति का साधन के रूप में यह अनमोल है। इस पुरस्कार के बाद ही विश्व को रवीन्द्र का परिचय मिला। प्रथम परिचय में ही रवीन्द्र केवल भारत के कवि न होकर विश्व-वन्द्य कवि हो गये। उनके गीतों ने मानव-समाज को मोह लिया। उनका प्रकाश समस्त भूमण्डल पर सूर्य की प्रथम किरणों की तरह कुछ ही क्षणों में फैल गया। यह 'नोबल-प्राइज' प्रति-वर्ष उस वर्ष के सर्वश्रेष्ठ लेखक को मिलता है। इसलिये विश्व-कवि के जीवन में इसका विशेष महत्व नहीं था। प्रत्येक पुरस्कार विजेता रवीन्द्र की तरह यशस्वी नहीं हो पाता। सच तो यह है कि इस परस्कार से कवि का मान उतना नहीं बढ़ा जितना स्वयं पुरस्कार का बढ़ा। उस दिन के बाद संसार की दृष्टि में पुरस्कार की महानता बढ़ गई। पुरस्कृत होकर कवि ने परस्कार वितरकों पर जो उपकार किया, उसे वे स्वयं मानते हैं।

विश्व-कवि की रचनाओं का अनुवाद संसार की प्रायः सब भाषाओं में हो चुका है। उनका प्रचलन भी कल्पनातीत हुआ

है। अकेले एक जर्मन प्रकाशक ने जर्मनी में 'गीतांजलि' की ५० लाख से अधिक पुस्तकें बेची हैं। अंग्रेजी की गीतांजलि का प्रथम संस्करण १९१२ में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद उसके दर्जनों से अधिक संस्करण निकल चुके हैं। प्रकाशकों को एक वर्ष में ही कई नहीं, बल्कि एक ही महीने में तीन-तीन, चार-चार, संस्करण छापने पड़े हैं। यह लोकप्रियता कम होने के स्थान पर प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

मैंने प्रस्तुत पुस्तक में रवीन्द्र की मौलिक गीतांजलि के सब गीतों का समावेश करने के साथ-साथ उन गीतों का भी समावेश कर लिया है जिनका चुनाव रवीन्द्र ने अंग्रेजी की गीतांजलि के लिये अपने अन्य दो गीतसंग्रहों—खेया और नैवेद्य—से स्वयं किया था। जहाँ तक मुझे मालूम है रवीन्द्र की मूल गीतांजलि का हिन्दी रूपान्तर अभी तक नहीं हुआ है। अतएव इस दिशा में इस पुस्तक को प्रथम प्रयास कहा जा सकता है।

अनुवाद में वह प्रवाह, माधुर्य और सरसता कभी नहीं आ सकती जो मौलिक रचना में होती है। कहानी, नाटक व उपन्यासों का अनुवाद करना गीतों के अनुवाद की अपेक्षा सरस है। गीतों का रूपान्तर कभी मूल रचना जितना सरल नहीं हो सकता। मूल गीत छन्दोबद्ध गीत हैं, उनमें संगीत है, स्वर प्रवाह है और शब्दों का मधुर विन्यास है। अनुवाद में न संगीत, न स्वर-प्रवाह और न शब्दों का वैसा विन्यास ही संभव है। जिसे रवीन्द्र के काव्य का आनन्द लेना हो उसे बंगाली भाषा सीखनी होगी। श्री गोपालकृष्ण गोखले ने केवल रवीन्द्र की कविता का रस लेने के लिये बंगाली भाषा का अभ्यास किया था।

इतनी विवशताओं के होते हुए भी मैंने गीतों का यथार्थ अनुवाद करने का प्रयत्न किया है। और मेरा विश्वास है कि

अब भी इन गीतों में जो माधुर्य अवशिष्ट रह गया है वह भी इतना पर्याप्त है कि इन अनुवादित गीतों का स्थान भी संसार के अन्य गीतों से बहुत ऊँचा रहता है। रवीन्द्र के गीत दिव्य भावनाओं से भरे हुए हैं, फिर भी, उनमें ऐसी मानवता है कि साधारण से साधारण मनुष्य भी उन गीतों में अपने हृदय की झंकार सुन सकता है।

रवीन्द्र के गीत अन्य संसारी कवियों के गीतों की तरह हृदय की निर्बलताओं का रंगीन चित्रण नहीं हैं; उनमें विरह, विषाद, विक्षेपग्रस्त मन का क्रन्दन नहीं है; बल्कि उनमें अलौकिक आशा, आह्लाद और आलोक की अमित आभा है। वे गीत मनुष्य की आत्मा को आवेशों की लहरों में डूबने के लिये संसार की भँवरों में नहीं छोड़ देते बल्कि उसे उन लहरों से खेलते हुए पार उतरने की शक्ति देते हैं। उनमें जीवन का अमर सन्देश है, जीवन की प्रेरणा है, और एसी पूर्णता है जो हृदय के सब अभावों को भर देती है।

रवीन्द्र से पूर्व किसी कवि के काव्य में इतनी पूर्णता थी तो केवल वैदिक काल की ऋचाओं में थी। मुझे निश्चय है कि रवीन्द्र की प्रतिभा का स्रोत अवश्मेव वैदिक ऋचायें थीं। वैदिक मंत्रों से ही रवीन्द्र को ऐसे अमर गीतों की प्रेरणा मिली थी। उनके अनेक गीतों में वैदिक मंत्रों की झलक दृष्टिगोचर होती है।

रवीन्द्र के २०३ गीतों में से ५० के लगभग ऐसे हैं जिनमें विश्वात्मा से वियुक्त आत्मा की अपने पुरातन विराट्-रूप से एकाकार होने की उत्कट आकांक्षा है। उस विश्वात्मा के चरणों में अपने को समर्पित करने के लिये ही कवि ने गीतों का आश्रय लिया है। रवीन्द्र कहते हैं—

"प्रभु ! अपने गीतों के पंखों से ही मैं तेरे चरणों का स्पर्श

कर पाता हूँ।...प्रभु! ऐसा वरदान दे कि एक ही प्रणाम में मेरा सारा देह तेरे चरणों का स्पर्श कर ले! ...मानसरोवर की ओर जानेवाले हंस जिस तरह दिन-रात बिना रुके एक ही उड़ान में उड़ते जाते हैं, उसी तरह महामृत्यु के पथ पर मेरे प्राण एक ही नमस्कार में उड़ चलें!"

कवि ने महामृत्यु के पथ को जीवन के पथ से भी अधिक सुन्दर और कोमल बना दिया है। जीवन की यात्रा में शरीर जब थकने लगता है और मृत्यु की झलक स्पष्ट दिखाई देने लगती है तो भी कवि उसमें भगवान का सन्देश सुनता है। वह कहता है—

"प्रभु की यही इच्छा है कि अब मैं अपनी वीणा को तारस्वरों में न बजाऊँ। अब मुझे अपने गीतों को बहुत मन्द स्वर में कहना होगा!"

फिर भी, कवि का हृदय अपने प्रभु को अपने अन्तिम गीत की प्रतीक्षा के लिये कितने सुन्दर शब्दों में प्रेरित करता है—

"प्रियतम! अपने जीवन के अन्तिम गीत में मैं तेरे चरणों में उस कुमारिका को अर्पित करूँगा—जिसने प्रभात की प्रथम किरण में भी अपना घूंघट नहीं खोला था!"

ऐसा प्रतीत होता है कि कवि रवीन्द्र का अवतार अपने प्रभु को गीत सुनाने के लिये ही हुआ था। इतने गीत गाकर भी कवि का कहना है—

"प्रियतम जो गीत गाने के लिये मैं तेरी सभा में आया था उन्हें आज तक नहीं गा सका। यह जीवन केवल अपनी वीणा की तारों का स्वर साधने में ही बीत गया।"

जीवन के पिछले प्रहर में भी कवि का हृदय गीतों से थका नहीं था। नये-नये गीतों से वह अपने प्रभु को मुग्ध कर रहा

था। अपने को सम्बोधित कर कवि कहता है—

"सितार की पुरानी तारों को एक-एक करके उतार दे, उस पर नई तारें चढ़ा ले!"

इसलिये अपने अन्तिम श्वास तक कविसम्राट नये-नये गीतों की रचना करते रहे।

मेरा विश्वास है कि अभी तक हम विश्व-कवि के गीतों की थाह नहीं पा सके हैं। उन्हें एक बार पढ़ने के बाद जितना रस आता है, दूसरी बार के पाठ पर उस आनन्द की अनुभूति दुगनी हो जाती है। जितनी बार पढ़ें, उतनी बार ही उनका रस बढ़ता जाता है। सच तो यह है कि आजकल भी हम उन गीतों के उस अर्थ को पूरी तरह नहीं समझ पाये जो कवि के हृदय में था। उन्हें समझने के लिये शायद कवि को ही दूसरी बार भूमि पर उतरना पड़े! किन्तु यह भी सच है कि उन गीतों के प्रथम स्पर्श से ही साधारण-से-साधारण, शुष्क-से-शुष्क मनुष्य का हृदय भी अलौकिक आनन्द से पुलकित हो जाता है। इन गीतों ने लाखों हृदयों को नया जीवन दिया है, नया प्रकाश दिया है। समय के साथ इन गीतों का प्रकाश भी बढ़ता ही जाता है। गीतों के गायक की वीणा मौन हो चुकी है, उसकी तारों में कंपन नहीं है, किन्तु, उनकी ध्वनि सूर्य-चन्द्र की किरणों में आलोक बनकर विश्व भर में व्याप्त हो चुकी है।

—सत्यकाम विद्यालंकार

वन्दना : १

[आमार माथा नत करे दाओ]

मेरा मस्तक अपनी चरण-धूलि तक झुका दे !
प्रभु ! मेरे समस्त अहंकार को आंखों के पानी में डुबा दे !
अपने झूठे महत्व की रक्षा करते हुए मैं केवल अपनी लघुता दिखाता हूं ।
अपनी ही परिक्रमा करते-करते मैं प्रतिक्षण क्षीण-जर्जर होता जा रहा हूं ।
मेरे समस्त अहंकार को आंखों के पानी में डुबा दे !
मैं अपने सांसारिक कार्यों में अपने को व्यक्त नहीं कर पाता ।
प्रभु ! मेरे जीवन-कार्यों में तू अपनी ही इच्छा पूरी कर ।

मैं तुझसे चरम शांति की भीख मांगने आया हूं ।
मेरे जीवन में अपनी उज्ज्वल कांति भर दे !

मेरे हृदय-कमल की ओट में तू खड़ा रह !
प्रभु ! मेरा समस्त अहंकार मेरे आंखों के पानी में डुबा दे !

निष्ठुर दया : २

[आमि बहु वासनाय प्राणपणे चाई]

मेरी वासनाओं की आग का अन्त नहीं और मेरा करुण रुदन
भी असीम है, फिर भी तूने कठोर अंकुश का प्रयोग कर
मुझे उनमें भस्म होने से बचा लिया! तेरी यह निष्ठुर
दया मेरे जीवन के कण-कण में पूर्ण रूप से व्याप्त है।

मैं तुझसे आकाश, प्रकाश, शरीर, मन, प्राण, किसी की भिक्षा
नहीं मांगता, केवल यही चाहता हूं कि मुझे प्रतिदिन
की लालसाओं से बचने योग्य बनादे। यही मेरे लिए
तेरा महादान होगा।

तेरी खोज में मैं कभी थकी-अलसाई आंखों से और कभी
अधजगा-सा तेरे मार्ग पर चलता जाता हूं।
निर्मोही! तू मेरे सामने से हटकर ओट में हो जाता है। मैं
इसका रहस्य समझ गया।
निर्बल और निराधार वासनाओं के मायाजाल से बचाकर तू
मुझे अपने पूर्ण मिलन के योग्य बना रहा है।
तेरी इस निष्ठुर दया का मर्म मैं पहिचान गया, प्रभु! पूरी तरह
पहिचान गया।

परिचय : ३

[कतो आजानारे जानाइले तुमि]

कितने ही अनजानों से तूने मेरा परिचय कराया है।
कितने ही पराये घरों में तूने मुझे निवास का स्थान दिया है।
बन्धु ! तू दूरस्थों को निकट और परकीयों को आत्मीय बनाता है।

पुराना घर छोड़कर अपरिचित घर में जाते हुए मैं चिन्तित हो गया कि वहां मेरा अपना कौन होगा ?
यह बात भी भूल गया कि उस नई जगह भी मेरे साथ तू तो वही चिर-परिचित होगा जिसे आत्मीय कह सकूंगा।
बन्धु ! तू दूरस्थों को निकट और परकीयों को आत्मीय बनाता है।

जीवन, मरण, इहलोक, परलोक, जहाँ भी तू मुझे ले जाएगा वहां जन्मजन्मान्तरों से परिचित तेरा साथ तो रहेगा ही।
तुझसे परिचित होकर किससे अपरिचित रहूंगा ? कहां जाने का निषेध होगा ? कहां जाने से भय लगेगा ?
तू समस्त विश्व को एकत्र करके उसकी रक्षा के लिये जाग रहा है।
बन्धु ! तू दूरस्थों को निकट और परकीयों को आत्मीय बनाता है।

वरदान : ४

[विपदे मोरे रक्खा कोरो]

प्रभो ! 'विपत्तियों से रक्षा करो'—यह प्रार्थना लेकर मैं तेरे द्वार पर नहीं आया, विपत्तियों से भयभीत न होऊँ—यही वरदान दे !

अपने दुःख से व्यथित चित्त को सान्त्वना देने की भिक्षा नहीं मांगता, दुःखों पर विजय पाऊं, यही आशीर्वाद दे—यही प्रार्थना है ।

तेरी सहायता मुझे न मिल सके तो भी यह वर दे कि मैं
दीनता स्वीकार करके अवश न बनूं!
संसार के अनिष्ट-अनर्थ और छल-कपट ही मेरे भाग में आये
हैं, तो भी मेरा अन्तर इन प्रतारणाओं के प्रभाव से
क्षीण न हुआ।
'मुझे बचाले' यह प्रार्थना लेकर मैं तेरे दर पर नहीं आया,
केवल संकट-सागर में तैरते रहने की शक्ति मांगता हूँ।
'मेरा भार हल्का करदे' यह याचना पूर्ण होने की सान्त्वना
नहीं चाहता, यह भार वहन करके चलता रहूँ—यही
प्रार्थना है!

सुख भरे क्षणों में नतमस्तक हो तेरे दर्शन कर सकूं।
किन्तु, दुख भरी रातों में जब सारी दुनिया मेरा उपहास करेगी,
तब मैं शंकित न होऊँ—यही वरदान चाहता हूँ!

अन्तर्विकास : ५

[अन्तर मम बिकशित कोरो]

हे जीवित विश्व के जीवन ! मेरा अन्तर विकसित करो ! निर्मल करो, उज्ज्वल करो, सुन्दर करो, जागृत करो, निर्भय और उद्यत करो, निरालस और शंकारहित करो !

हे जीवित विश्व के जोवन ! मेरा अन्तर विकसित करो !

मेरा अंतःकरण अखिल विश्व के समान उन्नत करो, मुझे बन्धन-मुक्त करो !
मेरे सब कामों में तेरा उल्लास-भरा गीत भर जाय !
अपने चरण-कमलों पर मेरा चित्त स्थिर करो !
मुझे आनन्दित करो, आनन्दित करो !

हे जीवित विश्व के जीवन ! मेरा अन्तर विकसित करो !

[प्रेम प्राने गाने गंधे]

तेरा अमृत प्रेम—प्राण, गान, गन्ध, प्रकाश व पुलक रूप में
निखिल द्युलोक से झर रहा है।
आज दिग्दिगंत के बंध टूट गये। वह अमृत सब दिशाओं से
आनन्द की तरगें बनकर उमड़ पड़ा है।

मेरा जीवन भी अमृत-आनंद की सुधा से ओत-प्रोत हो गया है।
मेरे प्राणों में कल्याण की भावनाओं का स्रोत अतिशय आनंद
की तरंगों में कमल-फूल की तरह फूट पड़ा है।
उसका समस्त मधु-पराग तेरे चरणों के अर्पण करना है।

मेरा हृदय, नीरव आलोक में जागे मेरे प्राण, स्वर्णिम उषा की
अरुणाई से आरक्त होगये हैं और अलसाई आंखों का
आवरण दूर होगया है।

नित्य नवीन : ७

[तुमि नव नव रूपे एशोप्राणे]

तू नित्य नये-नये रूपों से मेरे प्राणों में आ, प्रियतम !
गंध में आ, वर्ण में आ, शरीर में रोमांचित स्पर्श बनकर आ,
चित्त में अखंड हर्ष की सुधा बनकर आ,
मेरे मुग्ध मुँदे नयनों में आ, प्रियतम ! मेरे प्राणों में नित्य नये-नये रूपों में आ !

हे निर्मल, हे उज्ज्वल, हे मनोहर, आ !
हे सुन्दर, हे स्निग्ध, हे प्रशांत, आ !
मेरे सुख-दुःख में आ, नित्य नैमित्तिक कामों में आ, सब कामों का चरम लक्ष्य बनकर आ !

नित्य नये-नये रूपों से मेरे प्राणों में आ !

धान के खेत में : ८

[आज धानार खेते रौद्र छायाय]

आज धान के खेतों में धूप-छाया की आँख-मिचौली चल रही है।
नीले आकाश में मेघों की नाव किसने छोड़ दी है ?
आज भौंरे मधु पीना भूल गये; और तेरी प्रकाश-किरणों में मदमाते-से उड़ते फिर रहे हैं।
आज नदी के किनारे चक्रवाक-चक्रवाकी के युगल क्यों एकत्र हुए हैं ?

मित्रो ! आज मैं घर नहीं लौटूंगा।
आज मैं आकाश को भेदकर विश्व का वैभव लूटने जाऊंगा।
आज सागर के ज्वार में—फेन बनाकर, वायु मुक्त हास्य कर रही है।

आज अकारण ही बांसुरी बज उठी है, सारा दिन उसी में काटूंगा।

सागर में ज्वार : ९

[आनंदेरि सागर थेके]

आनंद सागर में आज ज्वार आया है—
सब जन तेरी पतवार पकड़े बैठे हैं,
जितना बने उतना बोझ लाद लो, हमारी दुःख-भरी नाव पार करो!

लहरों पर तैरकर हम पार जाएंगे, प्राण जायं तो जाने दो!
आनंद सागर में आज ज्वार आया है!

कौन है जो पीछे से पुकार रहा है?
कौन है जो आगे बढ़ने से रोक रहा है?
इस भय से हम पहले ही परिचित हैं।

किसी के शाप, किसी के ग्रह-दोष ने हमें सुख की ऊंची शिला पर बिठा दिया है?
लंगर की डोरी हमने खींच ली है और गाते-गाते चल पड़े हैं।

सोने की थाली में : १०

[तोमार सोनार थालाय साजाबो आज]

आज तेरी सोने की थाली को मैंने अपने दुःख-भरे आंसुओं की माला से सजाया है।
माता ! आज तेरे कंठ में मैंने मोतियों का हार गूंथ कर डाला है।

तेरे चरणों में चन्द्र-सूर्य के रत्न जड़े हुए हैं—और तेरे वक्ष पर मेरे दुःख-भरे आंसुओं की माला सुशोभित है।

धन और धान्य तेरी संपदा हैं,
उनका तू यथेष्ट उपयोग कर।
मुझे देना है तो दे दे; नहीं देना तो न दे।

मेरे घर का विशेष उपहार तो मेरे दुःख ही हैं।
मूल्यवान् उपहारों का तू सच्चा पारखी है, और मुझे विश्वास है कि तुझे उनकी पहचान है।
—जिसमें तेरी खुशी हो, उसको स्वीकार करले।

कास के फूल : ११

[आमार बेंधेछि काशेर गुच्छ]

हमने कास के फूलों का गुच्छ तैयार किया है,
हमने शेफाली की माला गूंथी है,
नये धान की मंजरी से हमने पूजा की थाली बनाई है—
हे शरत् सुन्दरी ! तू अपने शुभ्र मेघों के रथ पर बैठकर आ !
निर्मल नील पथ से आ, धौल धवल प्रकाश से जगमगाते
पर्वत-शिखरों पर से आ !
शीतल शिशिर से गीले श्वेत कमलों का मुकट पहन कर आ !
भरी हुई गंगा के तट पर घने एकान्त कुंज में हमने तेरी
अर्चना के लिए मालती के फूलों का आसन बिछाया है।
वहां तेरे चरणों का स्पर्श करने के लिए राजहंस घूम रहे हैं।
अपनी स्वर्ण-जटित वीणा की तारों पर मृदु मधुर झंकार छेड़,
उसका गुञ्जन क्षण भर में सम्पूर्ण हास्य-स्वर को
क्षणिक अश्रु-विन्दु में बदल देगा !
अपनी अलकापुरी के पारस-मणि-स्पर्श से, अपने करुण हाथों
से, मेरे मन के तारों को छुआ दे; उसके स्पर्श से मेरी
सब मनोभावनायें स्वर्णमयी हो जाएं और समस्त
अंधकार दीप्तिमान् हो जाय !
हे शरत् सुन्दरी ! तू अपने शुभ्र मेघों के रथ पर बैठ कर आ !
हमने तेरे स्वागत को कास के फूलों का गुच्छ तैयार किया है !

विचित्र नौका : १२

[लेगे छे अमल धवल पाले]
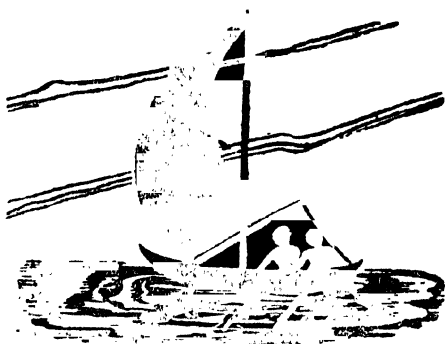
आज अमल, धवल, शीत, मन्द, मधुर पवन बह रहा है।
इस नौका का विचित्र जगत मैंने पहिले कभी नहीं देखा, कभी नहीं देखा।
कौन से सागर तट से, कितनी दूर से, यह नौका धन बटोर कर लाती है, मैं कुछ नहीं जानता।
मेरा अतृप्त मन भी अपनी समस्त ऐहिक इच्छाओं और संपदा को सागर के इसी तट पर, फैंककर अज्ञात प्रदेशों में घूमने के लिए नाव पर चढ़ चलने को चंचल हो उठा है।

पश्चिम से मेघों का दल उमड़ रहा है,
घने काले बादलों की दरारों से फूटकर अरुण किरणों की लाली
मेरे मुख पर पड़ रही है।
हे कर्णधार! आज तूने मुरली पर कौन-सा राग बजाया है,
कौन-सा मंत्र गाया है?

इन्हीं संशय-तरंगों में मेरा मन डोल रहा है; इस नौका का
विचित्र जगत मैंने कभी नहीं देखा, कभी नहीं देखा।

शरत्-सुन्दरी : १३

[आमार नयन-भुलानो एले]

मेरी आंखों को छलने आई हो, हे शरद-सुन्दरि !

पारिजात के इतस्ततः बिखरे असंख्य तुषारस्निग्ध फूलों पर
तेरे चरणों की रक्तिमा अब भी अंकित है।
वन, पर्वतों और नदियों के विस्तीर्ण तट पर छाया-प्रकाश-
मिश्रित आचल फैला हुआ है। तेरे रम्य मुख की ओर
निहार-निहार ये वनफूल मन ही मन न जाने क्या
मंत्रणा कर रहे हैं।
दया कर, अब अपने मुख का घूंघट उतार दे—
चेहरे पर बिखरे मेघों का आवरण अपने कोमल हाथों से दूर
करदे।

वन-वीथिकाओं में मंगल-वाद्य सुनाई दे रहे हैं, आकाश-
वीणा की तार-तार पर तेरा स्वागत गान शुरू हो गया
है, गगनांगन से सुन्दर स्वर्णिम नूपुरों की किंकण-ध्वनि
सुनाई दे रही है।
ऐसा लगता है मेरे ही अंतराल से वह ध्वनि उठ रही हो!
मेरी समस्त भावनाओं, अनुष्ठानों में अपनी दिव्य सुधा
भर कर, मेरी आंखों को छलने आई हो, हे शरद-सुन्दरी ?

करुण किरण : १४

[जननी तोमार करुण चरण ध्वनि]

जननी ! तेरे दयास्निग्ध चरणों का निवास प्रभातकाल की अरुण किरणों में है।

तेरी मृत्युञ्जयी वाणी निःशब्द आकाश में व्याप्त है।

समस्त भुवन में व्याप्त तेरी मैं वंदना करता हूं !

जीवन के समस्त कार्यों में व्याप्त तेरी स्तुति करता हूं !

तेरी पूजा के अर्घ्य में मैं आज अपना तन-मन-धन सब अर्पित करता हूं !

जननी ! तेरे दयार्द्र चरण अरुण-किरणों में वास करते हैं।

उदार स्वर : १५

[जगत् जुड़े उदार सुरे]

जग भर में फैलने के लिये यह उदार स्वर आज आनंदमय
गीत के रूप में निकल रहा है।
यह गीत मेरे हृदयतल से कितनी सुन्दर रीति से उमड़ा है!
वायु, जल, आकाश, प्रकाश और सभी वस्तुओं को मैं किस
सुन्दर रीति से प्रेम करता हूँ!

विविध साजों से सजी अपनी हृदय-सभा किस सुन्दर रीति
से भरूं?
आँख खोलते ही मेरे प्राणों में कैसे आनन्द का स्रोत भर जाय?

जिस मार्ग से मैं चला जा रहा हूँ, उस मार्ग के सब यात्रियों
को कैसे सन्तुष्ट करूं?
'तू सर्वत्र वास करता है', यह बात मेरे जीवन में कितनी
सुन्दर सजीव समता लाती है।

तेरा नाम मेरे सब कामों में कैसे स्वतः ध्वनित हो उठता है?

रात्रि-प्रतीक्षा : १६

[मेघेर पर मेघ जमे छे]

बादलों पर बादल छा गये, अंधेरा होगया—
ऐसे समय मुझ अकेले को अपने द्वार के बाहर, प्रतीक्षा में
क्यों बिठा दिया, मेरे प्रियतम !

दिन ढलने पर, शाम की वेला में, मैं रोज विविध कामों और
विविध लोगों में व्यस्त रहता हूँ।
आज इस अंधेरी शाम में यहाँ अकेला केवल तेरे दर्शन की
आशा पर ही बैठा हूँ।
तूने यदि आज भी अपने दर्शन न दिये, और मेरी निपट
उपेक्षा कर दी, तो यह बरसात की लंबी रात कैसे कटेगी ?

दूर के उदास नीले आकाश को मैं निर्निमेष देख रहा हूँ—
मेरा मन हवा में उड़ते बादलों के साथ व्योम-विहार कर
रहा है,
मुझ अकेले को द्वारों के बाहर क्यों बिठा दिया, मेरे प्रियतम !

विरह-ज्योति : १७

[कोथाय आलो]

प्रकाश—अरे, प्रकाश कहाँ है ?
विरह की ज्योत्स्ना से दीपक को प्रदीप्त कर ले !
बुझे हुए दीपक को रख दे, विरह की नई ज्योति से उसे जला ले !

'ऐसा ही भाग्य में लिखा है', यह कहने से मरण अच्छा है—
विरह की अग्नि से अपने दीपक को जला ले !

वेदना-रूपी दूती गा रही है,
'अरे प्राण !' तेरे लिये भगवान् जाग रहे हैं—
वे रात के घने अंधकार में अभिसार के लिये तुझे पुकार रहे हैं,
तुझे दुःखी देखकर वे तेरे प्रेम को गौरवान्वित करते हैं—
तेरे लिये भगवान् जाग रहे हैं !

गगनांगन मेघों से भर गया है,
वर्षा का पानी झर-झर झर रहा है—
बुझे हुए दीप को विरह की ज्योति से जगा ले—

इस घोर रात्रि में मैं अकेला ही किसकी प्रतीक्षा में जाग रहा हूँ ?
बरसात का पानी झर-झर झर रहा है—

बिजली की चमक क्षण भर के लिये होती है, नाव घने
अंधकार से घिरी है—
कौन जाने कितनी दूर से रात्रि के गंभीर गीत का स्वर आ
रहा है ?
वह गीत मेरी सम्पूर्ण आत्मा को अपनी ओर खींच रहा है !

प्रकाश कहाँ है ? अरे, प्रकाश कहाँ है ?
अब विरह की अग्नि से ही दीपक को जगा ले, जगा ले, प्रेमी !
जगा ले।

मेघ गरज रहे हैं, वायु सां-सां करके चल रही है—
वेला निकल गई, अब कहीं जाना नहीं हो सकेगा—
निबिड़ निशा आबनूस के काले पत्थर की तरह काली है,
ऐसी रात में प्राणों को प्रेम के दीपक से प्रकाशित करले !

अपने दीपक को विरह की अग्नि से ही प्रदीप्त करले !

सावन-घन : १८

[आजि श्रावण-घन गहन-मोहे]

आज सावन के मेघों की घनी छाया में चुपके-चुपके, नीरव रात की तरह, मौन प्रभात में सबकी नज़र चुरा कर मत चले जाना !

आज प्रभात-काल के नेत्र बंद हो गये हैं, पूर्व का कोलाहल-पूर्ण पवन व्यर्थ ही किसी को पुकार रहा है।
सदा-जाग्रत नीले आकाश का मुख मेघों की चादर ने ढक लिया है।
वन-पर्वतों में आज गुञ्जन सुनाई नहीं देता।
सब घरों के द्वार आज बंद हैं।
निर्जन रास्ते पर तू यहाँ अकेला क्यों किसकी प्रतीक्षा में बैठा है ?

हे एकाकी सखा, प्रियतम ! मेरा द्वार खुला है—
स्वप्न की तरह मेरे सामने आकर लुप्त न हो जाना।

आषाढ़ की संध्या : १६

[आषाढ़ संध्या घनिये एलो]

आषाढ़ की संध्या घनी हो गई,
दिवस का अवसान हो गया।

बरसात की जलधारा रह-रह कर बरस रही है—
झोंपड़ी के एक कोने में बैठा तू कौन से विचार-सागर में डूबा है ?
जल-कणों से भीगी हवा जूही के वन में क्या सन्देश देने जा रही है ?
वर्षा की जलधारा रह-रह कर बरस रही है—
आज हृदय में तरंग उठी है, किंतु मुझे जिस किनारे की तलाश है, वह कहीं नहीं मिलता।
जल-कणों से भीगे फूलों की सुगन्ध ने प्राणों को बेचैन कर डाला है।
अंधेरी रात के सारे रिक्त पहर आज किन स्वरों से भर सकूंगा ?
कौन-सी मुरली खोने से मैं आज सब भूलकर व्याकुल हो उठा हूँ ?
वर्षा की जलधारा रह-रह कर बरस रही है—

अभिसार : २०

[आजि झड़ेर राते···]

हे मेरे प्राण-सखा !
आज बरसात की झड़ी में प्रिय-मिलन के लिये कहां बाहिर चल दिया ?

आकाश निराशा में रो रहा है—
मेरी आंखों में आज नींद नहीं,
हे प्रियतम द्वार खोलो, मैं तेरी ही राह देख रहा हूं।
बाहर तो कुछ भी दिखाई नहीं देता, तेरी राह कहां है, यही सोच रहा हूं।

किसी दूर के नदी-तट पर, किसी भयानक जंगल के शिविर में या किसी अंधकार में—
हे मेरे प्राण-सखा ! तू कहीं चला तो नहीं गया ?

युग-युग के वियोगी : २१

[जानि जानि कोन् आदिकाल हते]

मैं जानता हूं, अनादिकाल से, जाने कब—जीवन-प्रवाह में
मुझे सहसा छोड़कर तू चला गया है।

हे प्रिय! तू घर में और पथ में मेरे लिये असंख्य आनंद
छोड़ गया है।
कितनी बार तू मेघों की ओट में से मधुर हास्य करता रहा;
अरुण-किरणों में मैंने तेरे चरणों का स्पर्श किया है और
ललाट पर तेरे कर-स्पर्श का आनंद लिया है।
लोक-लोक में, काल-काल में, नये-नये रूपों में मैंने तुझ
अरूप का रूप अपनी आंखों में संचित किया है

आज भी तेरे साहचर्य के युग-युग के सहस्रों सुख-दुःखों की
स्मृतियां, प्रेम और संगीत—मेरे प्राणों में बसे हुए हैं!

स्वर-जाल : २२

[तुमि केमन करे गान करो]

हे गुणवान ! तू कैसा मधुर गीत गाता है—
मैं केवल मुग्ध होकर सुन रहा हूं, केवल सुन रहा हूं !

तेरे गायन का प्रकाश जग के कण-कण में व्याप्त है—
तेरे स्वरों की गंगा पाषाणखंडों को भेद कर वेग से बह रही है। मेरी इच्छा है कि मैं उन स्वरों में योग दूं, किन्तु मेरे कंठ के स्वर तेरे स्वरों को पकड़ नहीं पाते।

मेरे चारों ओर स्वरों का जाल बिछा है; तूने मुझे इस विलक्षण जाल में खूब बांध रखा है।

हृदय की ओट : २३

[अमन आडाल दिये लुकिये गेले···]

इस तरह तू भरी सभा में छिपकर न बैठ सकेगा !
इस समय मेरे हृदय में छिपकर बैठ जा—
कोई तुझे नहीं बुलायगा, किसी को तेरा पता नहीं लगेगा।

मैं देश-विदेश सर्वत्र भटका;
विश्व भर में तेरी आंख-मिचौनी चल रही है।
अब से तू मेरे हृदय के कोने में बैठा रह, मुझे छोड़कर न जा—
अब ओट में रहना नहीं होगा !

मेरा हृदय कठोर है, तेरे कोमल चरणों के योग्य नहीं—यह मैं जानता हूं।
किंतु, मित्र! तेरा स्पर्श जब मेरे हृदय पर होगा तो क्या मेरे प्राण द्रवित होकर कोमल नहीं होंगे?

कदाचित् मेरी उतनी साधना नहीं है, किंतु तेरी कृपा के कण जब झरेंगे तो क्या एक ही निमिष में मेरी फुलवारी नहीं खिल उठेगी?
और क्षण भर में ही वृक्षों पर फल नहीं लग जायंगे?

यदि देख न पाया : २४

[जदि तोमार देखा न पाई प्रभु]

प्रभो ! यदि अब इस जीवन में तुझे न देख पाया—
यह बात मन में कांटे की तरह चुभती रहेगी कि तुझे नहीं देख पाया।
यह बात मैं भूल न सकूंगा; इसकी वेदना सोते-जागते, दिन-रात बेचैन करती रहेगी।
संसार के बाज़ार में मैंने कितने ही दिन बिता दिये, मेरे दोनों हाथ धन-धान्य से कितनी ही बार पूरी तरह भर गये, किन्तु उससे मुझे क्या मिला ! यह बात मन में चुभती ही रही कि तुझे नहीं देख पाया, तुझे देख नहीं पाया।
आलस्यवश मैं जब रास्ते के किनारे बैठ गया और विश्राम के लिये बिछौना लगाने की व्यवस्था की, उसी समय स्मरण हो आया, यह प्रवास निष्प्रयोजन है। तुझे न देख पाऊंगा, यह बात मनसे भूलती ही नहीं।
तू मुझे भूल न जाय, सोते-जागते मुझे यही चिंता रहती है।
मेरे घर कितना ही हास्य हो, कितनी ही बांसुरी बजे, कितनी सज-धज से घर चमक उठे, किंतु, 'तू नहीं आयगा'—यह बात याद आते ही दिल बैठ जाता है। यह वेदना कभी भूलती नहीं।
तू मुझे भूल न जाय—यह शंका सोते-जागते, दिन-रात मुझे सताती रहती है।

विरह-ताप : २५

[हेरि अहरह तोमारि विरह]

विश्व के कण-कण में व्याप्त तुम्हारा विरह-ताप ही है जो वन, पर्वत, आकाश, सागर के विविध रूपों में व्यक्त हो रहा है।

यह विरह-दुःख ही है जो रात-भर निःशब्द तारों का दीपक लेकर तेरा रूप व्यक्त कर रहा है।

और जो सावन-भादों की जलधारा में कांपते पत्तों का गीत बनकर व्यक्त हो रहा है, यह भी तेरा विरह-दुःख ही है।

यही उत्कट विरह है जो मानवी भावनाओं, प्रेम, वासना, सुख, दुःख के विविध रूपों में, घर-घर में, छाया हुआ है।

मेरे गीतों में, मेरे स्वरों में भी यही विरह-ताप है जो मेरे हृदय में भरा है और पिघल-पिघल कर बह रहा है।

घाट पर : २६

[आर नाई रे बेला]

सखि री !
दिन ढल गया—

संध्या धरती पर उतर आई,
अब अपनी गागर भरने घाट पर चलना !

जलधारा के कल-कल स्वर ने संध्याकाल के आकाश में बेचैनी भर दी है।

वह स्वर मुझे अनवरत कह रहा है—
अपनी गागर भरने घाट पर चलना !

इस एकांत रास्ते पर कोई भी आज नहीं रहा,
हवा चंचल हो उठी है,
प्रेम की नदी में तरंगें नाच रही हैं,
'मैं लौट कर आऊं, या न आऊं', कुछ पता नहीं,
किससे मेरी भेंट हो जाय, कौन जाने ?
घाट पर पड़ी छोटी सी नाव में बैठा अजनबी बंसी बजा रहा है—

अब अपनी गागर भरने घाट पर चलना !

मेघोन्माद : २७

[आज बारि झरे झर-झर]

आज जल-भार से भारी मेघों से पानी झर-झर कर के बह
रहा है।
आकाश को खंडित करके जलधारा ज़मीन पर उतरी है,
आज इसका कहीं अन्त दिखाई नहीं देता।
वन, पर्वतों के ऊपर गर्जन करता बादल झोंके दे रहा है।

मैदानों में पानी की लहरें स्वतन्त्र विहार कर रही हैं।
आज मेघों की केशराशि बिखर कर कितना सुन्दर नृत्य
कर रही है !

इस वर्षा में मेरा मन फिर बेकाबू हो गया, और बादलों के
संग झूमने लगा—
अंतःकरण में आज कैसा कलरव उठा है !
द्वार-द्वार के अवरोध छिन्न हो गये हैं !

आज सावन के बादलों में उन्माद भर गया है –
आज घर के बाहर कौन जायगा' ?

[प्रभु तोमार लागि आंखि जागे]

प्रभु ! तेरी प्रतीक्षा में जागते आंखें थक गईं—
तुझसे भेंट नहीं हुई, तब भी मैं तेरी राह देख रहा हूँ;
यह राह देखना भी मुझे प्रिय ही लगता है।
द्वार के बाहर, धूल में बैठा, मेरा भिखारी मन तेरी करुणा की याचना कर रहा है।

तेरी करुणा नह मिली, मेरी कामना तृप्त नहीं हुई;
यह अतृप्त कामना भी मुझे प्रिय लगती है।

इस जग के राज-पथ पर कितने ही सुख-दुख-लीन पथिक मेरे सामने से गुज़र रहे हैं।
कोई मेरा साथी नहीं बनता, फिर भी मुझे यह आकांक्षा बनी है;

यह आकांक्षा भी मुझे प्रिय लगती है।

चारों ओर अमृत जल से व्याप्त व्याकुल श्यामला पृथ्वी यही
प्रेम-क्रन्दन कर रही है—
तुझसे भेंट नहीं हुई, केवल व्यथा ही मेरे भाग में आई है,
यह व्यथा ही मुझे प्रिय लगती है

तेरा चिन्तन : २६

[धने जने आछि जड़ाये हाय]

हे जीवनेश्वर ! यद्यपि मेरे 'चारों ओर धन-जन के जाल बिछे
हैं, फिर भी मेरे मन में तेरा ही ध्यान है—यह तू
जानता है ।
मेरे अन्तःकरण का निवासी होने से मेरे मन का भेद तू मुझसे
भी अधिक जानता है ।

मैं सुख में रहूं, दुख में रहूँ, भ्रम में रहूं या ज्ञान में रहूँ—
किसी भी अवस्था में रहूँ, मेरे मन में तेरा ही ध्यान है—
यह तू जानता है ।

मैं अपना अहंकार नहीं छोड़ सकता, उसे अपने कन्धों पर
लादे सारी दुनिया में भटक रहा हूँ ।
उसे छोड़ते हुए मन में टीस-सी उठती है, फिर भी मेरे मन में
तेरा ही ध्यान है—यह तू जानता है ।

मेरे पास जो कुछ है, सब मुझसे छीन ले—
सब त्यागकर ही मैं तुझसे सब ले लेता हूँ—मेरे मन में तेरा
ही ध्यान रहता है—यह तू जानता है ।

प्रेम-संकेत : ३०

[एइ तो तोमार प्रेम]

प्रियतम ! मैं जानता हूँ, यह तेरा प्रेम है जो पत्ते-पत्ते पर
स्वर्णाभा बनकर चमक रहा है !

जिससे अलसाये मेघ आकाश में झूम रहे हैं, सुवासित पवन
मेरे मस्तक पर जलकण बिखेर जाता है—
यह सब, हे मनहरण प्रभु ! तेरा ही प्रेम है।

आज प्रभात की आकाश-धारा मेरी आंखों में भर गई है—
यह तेरा ही प्रेम-संकेत है जो जीवन के कण-कण को मिला है।

तेरा मुख नीचे झुका,
तेरे नेत्र मेरे नेत्रों से मिले—
मेरे हृदय ने तेरे चरणों का स्पर्श कर लिया !
प्रियतम ! मैं जानता हूँ, यह तेरा ही प्रेम-संकेत है।

विश्व-सभा : ३१

[आमि हेथाय थाकि शुधु···]

मैं यहाँ केवल तेरा गीत गाने के लिये आया हूँ,
अपनी विश्व-सभा में मुझे गाने भर की अनुमति दे दे !
प्रभु ! तेरे संसार के अन्य किसी भी काम के मैं योग्य नहीं,
मेरे निरुपयोगी प्राण केवल तेरे गीत के स्वरों में ही व्यक्त होते हैं।

आधी रात की सुनसान बेला है,
देवालय में तेरी आरती हो रही है,
ऐसे समय हे स्वामी ! मुझे गाने का आदेश दे !

प्रभात की बेला में उषा की सुनहरी वीणा के तार बज उठेंगे,
तब तेरे दरबार में गीत गा सकूं, इतनी ही भिक्षा तुझसे चाहता हूँ।

प्रभु ! अपनी विश्व-सभा में मुझे गीत गाने का सम्मान दे।

आह्वान : ३२

[बाओ हे आमार भय मेंगे दाओ]

मेरा भय नष्ट करो प्रभु ! नष्ट करो !
मुझसे मुख मत मोड़ो !

तू पास ही था, मैं पहचान न सका—
मैं कहीं और ही देख रहा था, न जाने कहाँ ?

तू मेरे अन्तःकरण में विहार कर !
मेरे हृदय में हँसी का प्रकाश कर !

बोल, मुझसे कुछ भी बोल, मेरे शरीर का स्पर्श कर—
अपने हाथ बढ़ाकर मुझे उभार ले !

प्रभु ! मेरे सब ज्ञान भ्रामक हैं,
मेरा हास्य-रुदन सब भ्रामक है,
मेरे सामने आ, मेरा भ्रम दूर करो, मेरा भय नष्ट करो !

पुनः वियोग : ३३

[आबार एरा घिरेछे मोर मन]

उसने मेरा मन फिर घेर लिया—
फिर से इन आंखों पर परदा पड़ गया,
फिर, यह संसारी बातों के जाल में फँस गया,
फिर से यह नाना दिशाओं में भटकने लगा,
और फिर आग की लपटें धीरे-धीरे बढ़ने लगीं—
मैं तेरे चरणों से फिर अलग होगया !

दुनिया के कोलाहल में तेरा नीरव स्वर मेरे हृदय के अन्तराल में डूब न जाय !

सब के बीच तू मेरे साथ रह, मैं केवल तुझे ही देखता रहूँ !

यह प्रकाशपूर्ण विशाल त्रिभुवन मेरे चित्र में अखण्ड बना रहने दे !

[आमार मिलन लागि तुमि]

मुझसे मिलने के लिये, न जाने किस अनादि काल से, तू चला हुआ है।
तेरे सूर्य-चन्द्र तुझे मेरी आंखों की ओट नहीं कर सके।
अगणित प्रभात और सन्ध्या की वेला मैंने तेरे पैरों की आहट सुनी है।
तेरे दूत मेरे हृदय में चुपचाप निमंत्रण दे जाते हैं।

हे पथिक! न जाने क्यों आज मेरे प्राणों में अपार हर्ष भर गया है।
एक अवर्णनीय आनन्द की कंपकपी मेरे हृदय में व्याप्त होगई है,
आज क्या जाने की वेला आगई?
आज क्या मेरे सब कर्त्तव्य पूरे होगये।
प्रभु तेरे स्पर्श से वायु में जो मृदु-मधु-सुवास भर गया है,
वह मुझे जता रहा है कि तू मेरे बहुत निकट आ चुका है।

सजल घन : ३५

[एसो हे एसो, सजल घन]

हे सजल घन,
बरसात की जलधारा के साथ आ !
जीवन में अपना अपार श्यामल प्रेम देने आ।
पर्वतों के शिखरों का चुम्बन लेने आ !
अपनी छाया से कानन-भूमि का आच्छादन करता आ,
आकाश में उमड़ कर गम्भीर गर्जना करता आ !

पुलकित फूल और कदंब वृक्षों का वन तुझे देखने को उत्सुक हो उठा है।

नदी का कलरव ऊँचा होता जा रहा है।
हे हृदयहारी ! तृष्णा-हरणकारी, आंखों को शान्ति देने—
—मेरे मन में रहने को आ !

प्रचण्ड प्रवाह : ३६

[पारबि ना कि जोग दिते]

आनन्द के इस प्रवाह की प्रचण्ड गति के साथ तू अपने छंदों
का स्वर नहीं जोड़ सकेगा।
मृत्यु की वीणा में, दिशाओं में, सूर्य-चन्द्र में जो स्वर-गति है,
उसके साथ तू अपना स्वर नहीं मिला सकेगा।

सब में अनन्त वेग है, किसी को विश्राम की इच्छा नहीं,
कोई पीछे मुड़कर नहीं देखता, कोई शक्ति उन्हें नहीं रोक
सकती—तू उनका सहभागी होकर कैसे चल सकेगा ?

उसके आनन्दमय पदक्षेप के साथ उन्मत्त ऋतुएं नाचती हुई
आती हैं और चली जाती हैं—
उनके आगमन के साथ पृथ्वी पर रंग, गीत, गन्ध का प्रवाह
उमड़ आता है। उस आनन्द में स्वयं को डुबाने,
अर्पित करने में क्या तू उनका सहभागी हो सकता है ?

निशा-स्वप्न : ३७

[निशार सपन छुटलोरे]

रात्रि का स्वप्न पूरा होगया, अब पूरा होगया !
बंधन टूट गये, सब बंधन टूट गये !
अब प्राणों का परदा नहीं रहा, मैं बाहर आ गया—
हृदय-कमल की सारी पंखड़ियां फूट पड़ीं !

मेरा द्वार तोड़कर जब तू स्वयं आगया, तब आंखों के नीर में मेरा हृदय बहने दे; और अपने चरणों में लोटने दे !
आकाश से प्रभात के प्रकाश ने मेरी ओर हाथ फैलाया—
बन्दीगृह के टूटे हुए दरवाजों से जय-जयकार का शोर मच गया !

[शरते आज कोन अतिथि]

शरत ऋतु में आज मेरे प्राणों के द्वार पर कौन अतिथि आया है !

हे हृदय ! आनन्द-गान गा, आनन्द गान गा !

नीले आकाश का नीरव-संकेत,
आज अपनी वीणा की तार-तार से ध्वनित होने दे !

धान्य के खेतों में स्वर्णगीत चल रहा है, उसके स्वर में स्वर मिलाकर गा !
भरी हुई नदी के स्वच्छ जलप्रवाह में अपनी स्वर-झंकार तरंगित होने दे !
और द्वार खोलकर उसके साथ बाहर निकल चल !

अखंड आशा : ३९

[हेथा जे गान गाइते आसा आमार]

यहां जो गीत गाने मैं आया था, उन्हें नहीं गा सका।
आज केवल वीणा के तारों का स्वर साधता रहा,
गाने की मन में ही रह गई।
मेरे स्वरों में समता नहीं बँधी, मेरे शब्द लड़खड़ाते रहे।

केवल प्राणों में गीत गाने की व्याकुलता भरी रही।
आज ये फूल खिले नहीं, केवल हवा के संग डोलते रहे!

मैंने उसके दर्शन नहीं किये, उसके बोल नहीं सुने, केवल उसकी पदध्वनि ही प्रतिक्षण सुना करता हूँ—
यह व्यक्ति मेरे द्वार के सामने से आता और जाता है,
मेरा सारा दिन उसके सत्कार के लिये आसन बिछाने में बीत गया;

घर में दीया भी न जल सका;
अब उसे कैसे पुकारूँ?
उससे मेरी भेंट नहीं हुई;
किन्तु वह आयगा, भेंट होगी, यह अखंड-आशा मेरे प्राणों में बसी है।

ने उसके स्वर नहीं सुने, प्रतिक्षण उसकी पदध्वनि सुना करता हूँ।

अखण्ड चिन्ता : ४०

[जा हारिये जाय ता आगले बोशे]

जिसके होंने की कोई सम्भावना नहींरही, उसकी कितनी देर
और आश लगाये रहूँ ?
अखंड-चिन्ता करते हुए रात भर का यह जागरण अब मुझसे
न हो सकेगा ।

रात-दिन मैं अपना द्वार बन्द करके बैठा हूँ,
जो आना चाहेगा वह दीवार फांदकर भी आ जायगा ।

मेरी सुनसान झोंपड़ी में कोई नहीं आयगा—
इसलिये तेरा आनन्दमय विश्व बाहर ही खेल खेलता है ।

आने का समय : ४१

[एइ मलिन मस्त्र छाडते हबे]

मेरा यह मलिन अहंकार, मेरे ये जीर्ण वस्त्र—
इन्हें अब छोड़ना होगा।
दिन भर के काम में ये धूलि-धूसर और मलिन हो गये हैं,
इनमें कितनी तपश भर गई है कि सहन नहीं होता!

दिन समाप्त होने के साथ मेरा काम भी समाप्त होगया,
अब उसके आने का समय होगया;
अब मैं स्नान करलूँ, नए परिधान पहिन लूँ, संध्याकाल के फूलों का चयन करके माला गूंथ लूँ!

गा, जल्दी गा, अब जाने का समय नहीं है।

राखी की डोर : ४२

[गाये आमार पुलक लागे]

मेरे अङ्ग-अङ्ग में रोमांच हो आया, आंखों में उन्माद छा गया,
मेरे हृदय में लाल राखी की डोर किसने बाँध दी ?

आज आकाश के नीचे जल-स्थल, फूल-फल में तूने मेरे मन का सिंचन कैसे कर दिया ?

आज तुझसे मेरा राखी का खेल इतना सुन्दर कैसे बन गया !

फिर भी, मुझे जिसने बुलाया है उससे भेंट होगी, या उसकी खोज में भटकना पड़ेगा, इसकी कुछ थाह नहीं लगती !

आज मेरा आनन्द न जाने किस बहाने आंखों के जल में झरने को व्याकुल हो उठा है।
आज विरह ने मधुर रूप धारण करके मुझे विह्वल बना दिया है !

रक्षा-बन्धन : ४३

[प्रभु आजि तोमार दक्खिन हात]

प्रभु ! आज मैं तेरे दक्षिण हाथ में राखी बान्धने आया हूँ,
उसे छिपा न लेना !
तेरे हाथ में राखी बांधकर मैं सब के राखी बांध दूँगा, कोई भी
इस बन्धन से बाहिर न जा सकेगा।
आज अपने-पराये का भेद रहा ही नहीं—
आज मैं अपने अन्दर-बाहर सबको एक-सा देख रहा हूँ !

तेरे विरह-दुख में रोता-रोता मैं इतनी देर भटका, किन्तु, वह
विरह क्षण भर में नष्ट होगया।

अब तेरी ओर दौड़ा आता हूँ—
तेरे हाथ में राखी बान्धने आता हूँ, उस हाथ को छिपा न लेना !

आनन्द-यज्ञ : ४४

[जगते आनंद यज्ञे आमार निमंत्रण]

जगत के आनन्द-समारोह में भाग लेने का मुझे निमंत्रण मिला है। इससे मेरा मानवी जीवन धन्य हो गया है।
मेरे नयन अब रूप-सुधा का पान करते हैं और मेरे कान दिव्य स्वर सुनते हैं।

इस उत्सव में मुझे बांसुरी पर गाने का काम तूने सौंपा है, इसलिये मेरे जीवन के सब हँसी-रुदन गीतों के स्वरों में गुंथ गये हैं।

अब, आखिर वह वेला आगई—
तेरे उत्सव में जाकर तेरी जयध्वनि सुनूं और तेरे चरणों में मौन प्रणाम की भेंट दूँ !

जगत के आनंद-समारोह में भाग लेने का मुझे तेरा निमंत्रण मिला है !

आलोक : ४५

[आलोक आलोकमय करे हे]

तू प्रकाश को प्रकाशमय करता है; तू प्रकाश का स्रोत है !
मेरी आंखों का अंधकार भी समाप्त होगया, समाप्त होगया।

पृथ्वी और आकाश आनन्द व हास्य से भर गये;
जहां तक दृष्टि जाती है मंगल ही मंगल दिखाई देता है।

तेरा प्रकाश वृक्षों के पत्तों पर नाचकर हृदय को उल्लास से भरता है।
तेरा प्रकाश पक्षियों के घोंसलों में गीतों की कड़ियां जोड़ता है।

तेरा प्रकाश प्रेम बनकर मेरे अंग-अंग को स्पर्श कर रहा है,
और मेरे हृदय को दिव्य आनन्द से भर रहा है।

सन्मान : ४६

[आसन तलेर माटिर परे]

अपने आसन तले की ज़मीन पर ही मुझे पड़ा रहने दे !
तेरी चरण-धूलि से धूसर हो जाऊं तो होने दे।
यही मेरा मान है, अपने से दूर न कर।
इस रीति से तू मुझे सदा स्मरण रखेगा।

तेरी यात्रा के समय जो मेला लगेगा मैं उससे दूर ही रहूँगा,
मुझे तूने सबसे अन्तिम स्थान देना।

तेरा प्रसाद पाने के लिये लोग दौड़ेंगे—मुझे प्रसाद नहीं लेना।
मैं तो, बस तुझे देखता खड़ा रहूंगा।
सबसे अन्त में जो शेष रह जाय वही मुझे दे देना

तेरी चरण-धूलि में धूसर जाऊं तो होने देना

निःस्वर वीणा : ४७

[रूपसागरे डुब दियेछि]

रूप-रत्नों से भरे इस सागर में, मैं अरूप, अनमोल मोती को पाने के लिये गोता लगाता हूं !

बस, अब मैं अपनी जीर्ण नौका को घाट-घाट पर नहीं ले जाऊंगा।

लहरों पर खेलने मचलने की बेला समाप्त होगई।
अब अमरता के अथाह सागर में लीन होना है।

अपने प्राणों की वीणा अब मैं उस अथाह अंधकार-भरी सभा में ले जाऊंगा जहां स्वरहीन तारों के गीत अनादि काल से गाये जाते हैं।
वहां उसे अनंत के स्वर से मिला लूंगा और जब मेरी वीणा अपना अन्तिम गीत गाकर निःस्वर हो जायगी, निःशब्द हो जायगी तब उसे अपने नीरव प्रभु के चरणों में रख दूंगा।

प्रकाश-पुष्प : ४८

[आकाश तले उठलो फुटे]

आकाश में प्रकाशरूपी कमल खिला है;
उसकी पंखड़ियां फूट-फूट कर सब दिशाओं में बिखर गई हैं।
अंधकार के काले भंवरे पानी लेने चले गये हैं।

पुष्प के मध्य भाग में स्वर्ण का कोष है,
मैं वहां आनन्द से बैठा हूँ और प्रकाश-पद्म का पराग बिखेर रहा हूँ।

आकाश में तरंग उठी है, पवन में पुलक है, चारों ओर से गीतों की लहरें उमड़ पड़ी हैं;
चारों ओर से प्राणों का नृत्य फूट पड़ा है और आकाश में भर गया है;
इस प्राण-सागर में गोता लगाने को मैं अपने वक्ष में प्राण भर रहा हूँ।
अपना आंचल पसारकर पृथ्वी भी दशों-दिशाओं से प्राण का संचय करके अपने हृदय में भर रही है।

जहां-जहां भी प्राणधारी जीव रहते हैं, उन सबको उसने बुलाया है।

सबके हाथों में और सबके पात्रों में उसने अन्न भर दिया है।
मेरा मन भी गीतों से और गंध से भर गया है और मैं बड़े
आनंद से स्वर्णकोष में बैठा हूँ।
पृथ्वी ने मुझे घर से अपना आंचल पसारकर बुलाया है और
हृदय में बिठाया है!

प्रकाश! मैं तुझे नमस्कार करता हूँ, मेरा विषाद नष्ट कर, मेरे
समस्त शरीर पर अपना वरद हाथ रख।

भू-माता! मैं तुझे नमस्कार करता हूँ, मेरे समस्त मनोरथ
पूर्ण कर!

हास्य-प्रका ।　　　　:　　　　४६

[हेथाय तिनि कोल पेतेछेन]

मेरे इस घर में उसने स्वयं प्रवेश कर लिया !
उसके लिये अब सुन्दर आसन बिछा, खुशी के गाने गा, घर
की धूलि को निकाल, हृदय की मलिनता को धो;
और फूलदान में पानी रखकर फूल सजा ।

दिन-रात वह मेरे ही घर में रहता है, सुबह की वेला में उसका
हास्यप्रकाश घर भर में फैल जाता है ।
प्रभात में हमारी आंख खुलते ही उस आनन्द-रूप के दर्शन
होते हैं, उसकी मुसकान से सारा घर फिर खिल
उठता है ।

हमारे घर में वह अकेला ही बैठा है ।
जब हम काम पर बाहर जाते हैं तो वह द्वार तक विदा देने
आता है ।
दिन ढलने पर जब हम अपने काम-धन्धों से निपटकर घर
वापिस आते हैं तो वह घर में अकेला ही बैठा
होता है ।

मैं जब बिछौने पर बेखबर सो जाता हूँ तो वह मेरे घर में
अकेला जागता रहता है !

उस समय उसकी लुप्त ज्योति जग में कहीं दिखाई नहीं देती।
वह ज्योति उसके आंचल में रात भर प्रज्वलित रहती है।

कभी निद्रा में, कभी स्वप्न में वह आता-जाता है और हमारे
घर के अंधकार में हँसता रहता है!

अकेला दीप : ५०

[निभृत प्राणेर देवता]

हे पुजारी !
जिस जगह अकेला प्राणों का देवता जाग रहा है, उस मंदिर का द्वार खोल !

आज मैंने उस देवता के दर्शन करने हैं ।
अन्य दिन, मैं केवल बाहर भटक २ कर न-जाने किसकी खोज करता रहा !

मेरी सन्ध्याकाल की आरती का पाठ अभी पूरा नहीं हुआ ।
पुजारी ! अपनी जीवन-ज्योति से मेरा जीवन-दीप जला !
आज मैं अत्यन्त एकांत में पूजा का सामान सजाऊँगा ।
जहां विश्व के शत-शत साधकों ने पूजा की अनन्त दीपमाला जलाई है, वहीं मैं भी अपने अकेले दीपक को प्रज्वलित करूँगा !

प्राण-वीणा : ५१

[कोन आलोके प्राणेर प्रदीप]

हे साधक !

कौन-सी ज्योति से अपने प्राण-प्रदीप को प्रज्वलित करने के
लिये तू पृथ्वी पर आया है ?

इस दुस्तर संसार में तेरी प्राण-वीणा दुखों के आघात से
झंकृत हो रही है !

इस घोर संकट में किस माता के मुख पर हंसी लाने के लिये
तू हंस रहा है ?

कौन जाने, तू किसकी खोज में सब सुखों का त्याग करके भटक
रहा है !

वह कौन है, जिससे तू प्रेम करता है, और जो तुझे इतना व्याकुल
करके रुला रहा है ? तेरे जीवन का साथी कौन है, यही
जानने को मैं चिन्तित हूं। किन्तु, आश्चर्य ! तुझे तो
इसकी चिन्ता ही नहीं।

तू मृत्यु को भूलकर कौन-से प्राण-सागर की आनन्दमयी
तरंगों में बह रहा है !

आत्मीय : ५२

[তুমি আমার আপন]

मुझे यह कहते हुए आने दे कि तू मेरा जीवन है, तू मेरा आत्मीय है, तुझमें ही मेरे जीवन का संपूर्ण आनंद भरा है, तू ही मेरा अपना है !

मुझे अमृत भरा स्वर दे, मेरी वाणी को अत्यन्त मधुर कर दे, मेरा तू ही प्रियतम है, यह कहते हुए मुझे आने दे !

यह संपूर्ण पृथ्वी, यह संपूर्ण आकाश तुझसे भरा है, तुझमें व्याप्त है; यह बात मेरे अंतःकरण से निकले, ऐसा वर दे !

मुझे दुखी जानकर तू मेरे पास आता है, मुझे छोटा मान मुझसे प्रेम करता है—छोटे-से मुख से यह बात कहते हुए मुझे आने दे !

तू मेरा जीवन है—आत्मीय है—अपना ही है !

चरणों में : ५३

[नामाश्रो नामाश्रो श्रामाय]

मैं तेरे चरणों में नत   ता हूँ।
मेरी आँखों के जल में मेरा मन पिघलने दे, मेरा जीवन
बहने दे!

मैं अहंकार की ऊँ   चोटी पर अकेला बैठा हूँ, मेरे पाषाण-
मय आसन को तोड़-फोड़ दे, धूलि में मिलादे, मैं तेरे
चरणों में नत होता हूँ!

कौन जाने इस निष्फल जीवन में मुझे किस बात पर गर्व है?
दिन के कामों में मैं अथाह अहंकार में डूब गया था, अब
संध्याकाल में मेरी पूजा विफल न हो जाय, इसीलिये
प्रभु! तेरे चरणों में   नत होता हूँ—नत होता हूँ!

गन्ध-विधुर वायु : ५४

[म्राजि गन्ध विधुर समिरणे]

आज गंध-विधुर वायु में किसकी खोज करते हुए मैं वन-वन
में घूम रहा हूँ ?
आज तपते हुए नीले आकाश में किसका व्याकुल रुदन शुरू
होगया ?
बहुत दूर दिगंत में उठते संगीत ने मेरे दिल में कपकपी क्यों
पैदा करदी है, अब मैं इस गंध-विधुर वायु में किसकी
तलाश कर रहा हूँ।

मैं नहीं जानता कि इस नन्दन वन में कौन-से राग पर मुग्ध
होकर यह यौवन का मद जाग उठा है।
आज आम्र-मंजरी की सुगन्ध में, नये पल्लवों के मरमर राग
में, चन्द्रकिरण की सुधा से भीगे आकाश में, अश्रुओं
के आनंद-भरे स्पर्श में, कौन ऐसी वस्तु है जिससे गन्ध-
विधुर वायु पुलकित हो उठी है ?

वसन्त : ५५

[आज बसंत जागृत दुआरे]

आज वसंत के द्वार खुल गये हैं !
तेरे उदास, बुझे जीवन का कोई उपहास न करे—
इसलिये तू अपने हृदय की कलियों को खुलने दे, अपने-पराये
का भेद भूल जा, इस संगीत स्वर से गूँजते आकाश में
अपनी सुवास की लहरें उठने दे !

आज वन के पत्ते-पत्ते से तीव्र वेदना व्यक्त हो रही है।
व्याकुल वसुन्धरा क्षितिज पर किसी की राह में सजल
पलकें बिछाए बैठी है।

दक्षिण की वायु भी द्वार-द्वार जाकर किसको खोज रही है ?

प्रेमातुर रजनी भी धरती पर किन चरणों की आहट सुनने को
जाग रही है ?

हे कान्त ! तुझे बुलाने को किसने गंभीर आह्वान किया है ?

सिंहासन : ५६

[तब सिंहासेर आसन हते]

तू वहां अपने ऊँचे सिंहासन पर ठा था—
मैं यहां बैठा अपने गीत गा रहा था—
तेरे कानों तक उन गीतों की अस्पष्ट-सी ध्वनि पहुँची और तू
नीचे उतरकर मेरे घर के द्वार की सीढ़ियों पर खड़ा
हो गया !

तेरे दरबार में अनगिनत गुणी गायक हैं;
किन्तु मुझ गुणहीन के गीतों ने ही तेरे प्रेम को जगाया है।
विश्व के गीतों में से एक मेरे करुण स्वर ने ही तुझे
स्पर्श किया है !

तू वरमाला हाथ में लेकर नीचे उतर आया, और मेरे निर्जन
घर के द्वार की सीढ़ियों पर खड़ा हो गया !

एक बार : ५७

[तुमि एबार आसाय]

हे नाथ ! मेरी इतनी तू विनती स्वीकार कर; एक बार स्वीकार कर !

मेरे हृदय में रह, अब लौटकर न जा !

जो दिन तेरे वियोग में गया, वह धूलि में मिल गया ! अब तेरे ही प्रकाश में जीवन-कलिका को खिलाने के लिये मैं दिनानुदिन जाग रहा हूँ ।

किस उन्माद में, किसकी खोज में, मैं इधर-उधर की राहों पर भटकता रहा ? कौन जाने ?
अब मेरे हृदय पर कान रख और अपनी ही आवाज़ सुन !

मेरे पास जो पाप-धन या छल-बल तुझे दिखाई दे, उसे आग में जल दे !

जीवन-सरोवर : ५८

[जीवन जलन शुकाये जाय]

जब जीवन का सरोवर सूख जाय, हृदय-कमल की पंखड़ियाँ झुलस जाएं, तब तूने करुणा के बादलों के साथ उमड़-घुमड़ कर आना!

जब जीवन का सारा माधुर्य कटुता के सूखे मरुस्थल में बदल जाय, तब तूने गीतों की सरस गंगा बनकर अकाश से उतरना!

जब संसारी कामों का कोलाहल दशों-दिशाओं से उठकर गरज रहा हो और मुझे अपनी हीं सीमा में कैद करले, तब हे प्रशांत प्रभु! मेरे पास शांति और विश्राम-दूत बनकर आना!

जब मेरा दीन-हीन हृदय अपने में ही सिमटा-सा कोने में बैठा हो, तब हे उदार प्रभु! मेरे द्वार खोलकर राजसी समारोह के साथ मेरे घर में अचानक प्रवेश करना!

जब लालसायें अपनी प्रचण्ड धूलि और चमकीली वंचनाओं से विवेक को अन्धा बना दें, तब तू हे प्रभु! अपने तेज और ओजस्वी प्रकाश के साथ आना!

नीरव कर दो : ५६

[एबार नीरव करे दाओ]

रे वाचाल कवि ! अब तुझे व्यर्थ प्रलाप नहीं करने दूँगा ।
अब उसकी हृदय-वंशी स्वयं अपने हाथों में लेकर गंभीर स्वरों में बजा !
इस वंशी में मध्यरात्रि के घने स्वरों की तानें छेड़, उस तान से तारों-नक्षत्रों को मुग्ध कर दे !

जीवन-मरण में तूने मेरा जो विस्तार किया है, वह सब अपने गीतों में समेटकर तेरे चरणों में रख देता हूँ !
इस तरह अनगिनत दिनों की वाक्य-राशि एक क्षण में समाप्त हो जायेगी, और मैं अगाध तिमिर में अकेला बैठकर वंशी की तान सुनूंगा !

अश्रुमाला : ६०

[विश्व जखन निद्रामगन]

संसार सो रहा है, आकाश में अंधेरा भरा है;
इस समय मेरी वीणा की तारों पर किसने झंकार की ?
मेरी आँखों की नींद उचट गई, बिछौना छोड़कर मैं उठ बैठा।
आँखें फाड़कर एकटक देखता रहा, किन्तु कोई दिखाई नहीं दिया।

गुञ्जन करते-करते गला भर गया;
पता नहीं, इन व्याकुल स्वरों से कौन-सी विशाल वाणी निकल रही है !

पता नहीं, कौनसी वेदना से भरे हृदय के आँसुओं से मेरा कंठहार बना है !
और, यह भी पता नहीं कि किसके कंठ में यह अश्रुमाला पहनाऊँ !

हतभाग्य : ६१

[शे जे पाशे एशे बोशेछिलो]

वह पास आकर बैठ गया, तब भी मैं जागा नहीं—
हतभाग्य ! तुझे ऐसी नींद कैसे आगई ?

जब वह आया था, प्रशांत रात की वेला थी, उसके हाथों में वीणा थी,
मेरे स्वप्न उसकी झंकार के स्वर में बह गये थे !

जागकर मैंने देखा, दक्षिण दिशा का पवन चारों ओर अन्धकार में अपना गन्धप्रसार करता हुआ चल रहा था।

मेरी सब रातें जाने क्यों इसी तरह निकल गईं ?
जाने क्यों, उसके श्वासों का स्पर्श तो हुआ लेकिन दर्शन नहीं हुए ?
हतभाग्य ! उसके कंठहार का तो वक्ष से स्पर्श हुआ लेकिन आलिंगन न हो सका !

वह आ रहा है : ६२

[तोरा शुनिस ना कि]

वह आ रहा है, आ रहा है, आ रहा है !
उसकी चरण-ध्वनि तुमने नहीं सुनी ?

युग-युग, पल-पल, प्रतिदिन, प्रति रात—
वह आ रहा है, आ रहा है, आ रहा है !

मन की तरंगों में मैंने उसके कितने ही गीत गाये हैं,
उन सब गीतों के स्वर से यही ध्वनि निकली है—
वह आ रहा है—आ रहा है—आ रहा है !
बसन्त के चमचमाते दिन, वह वन-मार्ग से आता है,
सावन की अंधेरी रातों में मेघों के गरजते रथ पर बैठकर वह आता है।
जब दुख पर दुख आता है; वह दुख नहीं उसी के चरण, हृदय को छूते हैं,
जब सुख का भान होता है, उसी के चरणों का स्पर्श मन को पुलकित करता है, उसकी चरण-ध्वनि ही हृदय का स्पन्दन है !
वह आ रहा है, आ रहा है, आ रहा है !

पराजय : ६३

[मेनेछि हार मेनेछि]

हार गया; मान लिया, मैं हार गया।
जब-जब मैं तुझे धकेलता आगे बढ़ा, तब-तब स्वयं धकेला गया।

मेरे मन-गगन में बैठा तुझ पर कोई परदा डाल रहा है, यह बात मुझे सहन नहीं है।
बीता हुआ जीवन छाया की तरह मेरा पीछा कर रहा है—
और वंशी के मायावी स्वरों से मुझे व्यर्थ ही पुकार रहा है।

उसका संग मुझसे छूट गया है!

मेरा हाथ तेरे हाथों में है;
इस जीवन में मेरा जो कुछ है, सब तेरे ही द्वार से भिक्षा में मिला है!

नई तारें : ६४

[एकटि एकटि करे तोमार]

सितार की पुरानी तारों को एक-एक करके उतार दे, उन पर नई तारें जोड़ ?

दिन का मेला अब बिखर चुका, रात की बैठक शुरू हुई;
पुराने स्वरों को बिठाने की कोशिश न कर, उनके दिन बीत चुके !

अब सितार पर नई तारें लगा !

आकाश के विशाल तिमिर को आने के लिए अपना द्वार खुला रख !
सात लोकों की निःस्तब्धता उसके साथ अपने घर में आने दे !

अब तक जो गीत तूने गाये थे उनकी आज परिसमाप्ति हुई,
ये वाद्य तेरे वाद्य हैं, यह बात ही भूल जा।
अपनी सितार पर नई तारें जोड़ !

प्रवास की तिथि : ६५

[कबे आमि बाहिर होलेम]

सोचता हूँ, यह बात कब हुई ?
तेरे गीत गाता-गाता मैं कब बाहर आया ?—कब आया
पर, यह बात आज की नहीं, आज की नहीं !
आज मैं तुझे पाने आया था,
कब आया था—यह भी भूल गया।
पर, यह बात आज की नहीं, आज की नहीं !

जैसे कोई कुछ देर बाहर आये,
और किससे मिलना है, यही भूल जाय;
इसी तरह मेरी जीवन-धारा बाहर आई थी,
पर, यह बात आज की नहीं, आज की नहीं !

मैंने तुझे कितने ही नामों से पुकारा, कितने ही चित्रों में तेरी ध्वनि उतारी, तेरा पता न चला।
पर, यह बात आज की नहीं, आज की नहीं !

इसी तरह तुझसे मिलने की आशा का आवरण मेरे हृदय पर छा गया !
पर, यह बात आज की नहीं, आज की नहीं !

दुर्भेद्य दीवार : ६६

[तोमार प्रेम जे बइते पारि]

मैं तेरा प्रेम पा सकूँ, यह कैसे होगा ?
तेरे—मेरे बीच तेरी कृपाओं की ऊंची दीवार खड़ी है।
तेरे दिये धन, जन, सुख, दुख की अनेक खाइयां हमारे बीच खुदी हैं।
फटे-फटे काले बादलों के पीछे जैसे कभी २ सूर्य की किरणें दिख जाती हैं, उसी तरह ओट में से कभी २ तेरा प्रेम मिल जाता है।
वे और ही होते हैं जिन्हें तू अपना असीम प्रेम-भार देने के लिये चुनता है।
उनके सब वस्त्राभरण तू पहले ही हर लेता है !
उनके घरों में तू धन-धान्य के भण्डार नहीं भरता, उन्हें निर्धन निरभिमान कर देता है।
जगत के मान-अपमान, लज्जा-भय आदि से वे शून्य हो जाते हैं।
विश्व के विशाल वैभव ने ही तनका वैभव खो जाता है।
इसी तरह ही तो उन्हें तेरा साक्षात होता है, वे अपने जीवन की परिपूर्णता तुझ में ही देखते हैं !

आज प्रभात में : ६७

[सुन्दरा तुमि एसे छिले]

हे सुन्दर ! आज प्रभात में तू अरुण वर्ण का पारिजात लेकर आया था !
नगर के लोग सोये हुए थे, पथ पथिक-हीन थे, तू अकेला ही अपने स्वर्ण-रथ पर चढ़कर आया था।
तू यहां कुछ देर ठहरा, अपने करुण नेत्रों से मेरी खिड़की में से अन्दर झांककर देखा;
हे सुन्दर ! आज प्रातःकाल तू आया था !

अपूर्व गन्ध से मेरे स्वप्न ओत-प्रोत होगये थे; मेरे घर का अन्धकार अपार आनन्द से थरथरा उठा था;
धूलि में लिपटी हुई वीणा किसी अनाहत आघात से बज उठी थी;
कितनी देर मैं विचार करता रहा—उठूँ, आलस्य छोड़ बाहर जाऊँ, लेकिन जब उठकर बाहर आया तो तू आँखों से ओझल हो चुका था !
तेरे दर्शन नहीं हो सके,
पर, हे सुन्दर ! आज प्रातःकाल तू आया था !

विराट् रूप : ६८

[आभार खेला जखन छिलो]

जब तक मैं-तू खेलते रहे, मैंने तेरा नाम-धाम नहीं पूछा;
ना तुझसे लाज आती थी, नाहीं भय लगता था;
मेरा-तेरा जीवन आनन्द-उल्लास की तरंगों में बहता चल रहा था!

प्रभात में तूने मुझे कितने ही बार पुकार कर जगाया है, और अपने संग खेलने लेगया है। हंसते-खेलते हम वन-पर्वतों में घूमे हैं।
उन दिनों तेरे गीतों का अर्थ समझने की मैंने कभी चिन्ता ही नहीं की। केवल तेरे स्वर में स्वर मिलाकर मैं भी गुन-गुनाया करता था।
और मेरा हृदय विलक्षण आनन्द से पुलकित हो नाच उठता था।

अब, उस खेल के बाद अचानक ही यह क्या देख रहा हूँ—
आकाश स्तब्ध है, रवि चन्द्र निःशब्द हैं; सम्पूर्ण विश्व, तारों-भरा सारा द्युलोक तेरे चरणों में झुका हुआ है!

घाट पर : ६९

[ओइ रे तरा दिला खुले]

अरे, वह नौका तो उसने बुलाली, अब तुझे उस पार कौन
ले जायगा ?

जब तुझे आगे जाना था तो पीछे-पीछे क्यों चलता रहा ?

वह बोझा तू पीठ पर लाद लाया, इसलिए तो अकेला घाट
पर रह गया ।

घर का बोझा ढो-ढो कर तू घाट के किनारे लाता है, इसलिये
ही तू पार नहीं जा सकता; यह तू भूल ही गया ।

फिर एक बार माझी को पुकार, अपना बोझा छोड़ दे, वाहन
छोड़ दे ।

अपना जीवन निरहंकार कर, भार शून्य कर, उसके चरणों पर
अर्पण कर दे ।

मेघ विहार : ७०

[चित्त आमार हारालो आज]

मेरा हृदय आज बादलों के संग उड़ गया—
कौन जाने वह उड़ता-उड़ता कहाँ जायगा ?

बादलों की सितार के तारों पर उसका आघात बिजली की तरह पड़ता है !
हृदय में उसकी तानें वज्र की तरह गरजतीं हैं !

दल के दल बादल उमड़-घुमड़ रहे हैं, उनके घने नीले अंधकार ने मुझे लपेट लिया है—
मदमाती हवा नाचने में मस्त है, वह भी मेरे हृदय के साथ बादलों के संग उमड़ रही है !

नीरव स्वर : ७१

[ओ गो मौन ! ना जदि कओ]

प्रभु ! तेरा अनन्त मौन भी मुझे स्वीकार है--
तेरी नीरवता को ही मैं हृदय में भर लूंगा !

तेरी प्रतीक्षा में झुकी हुई यह नीरव रात्रि तारों का दीपक जलाकर अनिमेष नेत्रों से तेरी राह देखा करती है।
मैं भी वही स्तब्ध प्रतीक्षा अपने हृदय में भर लूंगा !

जब प्रभात की वेला आयेगी, अंधकार दूर होगा—
तेरी वीणा के सुनहरे तारों से प्रस्फुटित स्वर-धारा आकाश को खंड-खड करके पृथ्वी पर छा जायगी—
उस समय मेरे मन-पंछी का घोंसला भी तेरे गीत, तेरे स्वरों से मुखरित हो जायगा न ?
और तेरी ही स्वर-कलिका मेरे उद्यान की वन-लताओं पर फूल बनकर खिल पड़ेगी, न ?

भग्न घर : ७२

[अतोबार आलो ज्वालाते चाइ]

मैं जब जब दीप जलाता हूँ, तब तब तू बुझा देता है
इसलिये मेरी भग्न जीवन-कुटीर में तुझे अंधेरे में ही
बैठना होगा !

मेरी जीवन-लता की जड़ सूख गई है, उस पर कलियाँ आती
हैं, पर फूल नहीं फूलते ।

मेरी वेदना का उपहार है—जीवन भर तेरी सेवा;
पुष्पों की संपदा, पूजा की महिमा—मेरे पास कुछ भी नहीं;
तेरा पुजारी दीनवस्त्र पहने बैठा है, तेरे उत्सव में भाग लेने को
उसे कोई बुलाया नहीं आया;

वंशी नहीं बजी, घर नहीं सजा—
केवल भग्न कुटी के द्वार से मैं रोता-रोता क्यों पुकार रहा हूँ ?

दीन देवगृह : ७३

[सबा हते राखबो तोमाय]

मेरे घर में ऐसा 'देवगृह' कहाँ है, जहाँ तुझे सबसे अलग परदे में बिठा सकूँ ?

मेरे पास ऐसा कोई 'मान' नहीं जिससे तेरा सम्मान कर सकूँ ?

हे स्वामी ! मेरे पास ऐसे कोई साधन नहीं जिनसे तुझे अर्घ्य दे सकूँ ।

हाँ, जब मैं तुझे प्रेम करता हूँ तो यह बांसुरी अपने आप बज उठती है और मेरे आंगन में अपने आप फुलवारी लग जाती है !

वज्र की झंकार : ७४

[बजे तोमार बाजे बांशि]

तेरे वज्रों में भी बांसुरी का स्वर सुनाई देता है, ये स्वर कितने सुन्दर हैं !

जो प्राण मृत्यु में से बाहर झांक रहे हैं, जो झंकार वज्रों में से निकल रही है, उसे आज के बाद कभी भूल नहीं सकूंगा;

उस झंकार के बादल हृदय-वीणा की तारों पर आनन्द की वर्षा करेंगे !

मुझे विश्रान्ति-पथ से दूर कर—
अशांति के गर्भ में ही अथाह शांति का वास है; वहीं जाकर शान्ति उपलब्ध होगी !

दया-जल : ७५

[दया दिये हवे गो मोर]

अपने दया-जल से तूने मेरे जीवन को धोकर निर्मल बना
दिया है !
नहीं तो, मेरे हाथ तेरे चरणों का स्पर्श कैसे करते ?

तुझे अर्पित करने को जो फूलों की डाली सजाई थी, वह देख
बाहर रखते समय कितनी मैली होगई ।
अब मैं अपना जीवन तेरे चरणों पर कैसे अर्पित कर सकूँगा ?

इतने दिन मुझे कोई दुख नहीं था, मेरे अंग-अंग पर मैल
लगा था।
आज तेरी शुभ्र कामना से व्याकुल हुए मेरे प्राण कितने
निर्मल होगये हैं !
नहीं—नहीं—अब इन्हें कभी धूल-धूसरित नहीं होने दूँगा

अन्तिम आलाप : ७६

[सभा जखन भाङ्‌गबे तखन]

जब सभा भंग होगी, तब अन्त में कौन-सा गीत गाने जाऊँ,
कदाचित तब तक गला रुक जाय—
तब तेरे मुख की ओर मैं केवल देखता रहूँगा !

आज तक जो स्वर नहीं सधे; क्या वे उसके सामने स्वतः उमड़ पड़ेंगे ?
सोने की तारों पर प्रेम की व्यथा क्या संध्याकाल के आकाश को ढक लेगी ?

इतने दिन अपने हृदय में इन स्वरों को मैंने साधा है, यह साधना यदि सफल हुई तो मैं कितना भाग्यवान होऊँगा !

इस जन्म की संपूर्ण साधना यदि मुझे विश्व-गान के आलाप के संवादी स्वर में गाने योग्य बना दे, तो मैं अपने को धन्य मानूँगा।

साधना : ७७

[चिर जनमेर वेदना]

हे प्रभो, मेरी जन्म-जन्म की वेदना ही मेरी जन्म-जन्म की साधना है !

अपनी अग्नि प्रज्वलित होने दे, मेरी दुर्बलता न देख, मुझ पर कृपा न कर;
जितना भी पाप मेरे भाग का है, वह सब सहन करूँगा, यही मेरी साध है;
उस आग में मेरी वासनायें भस्म होने दे !

मेरे वक्ष पर लिपटे बंधनों को टूटने दे,
अपना शंख ऊंची से ऊंची आवाज़ में बजने दे,
मेरा प्रसाद, मेरा सारा गर्व नष्ट होने दे और तीव्र चेतना जागने दे !

[तुमि जखन गान गाहिते बोलो]

तूने जब मुझे गीत गाने के लिये कहा, तो गर्व से मेरी छाती फटने को हुई ?
मेरी आँखें आँसुओं से डबडबा उठीं और मैं एकटक तेरे चेहरे की ओर देखता रह गया।
मेरे जीवन में जितना कटु, विषम और अस्तव्यस्त है, वह सब पिघलकर तेरी गीत-सुधा में बदलता गया।
मेरी सब साधना, अराधना, पक्षी की तरह पंख फैलाकर आनंद से उड़ने की कामना करने लगी।

मेरे गीतों की रागिनी तुझे श्रुति-मधुर लगती है, कर्ण-प्रिय लगती है!
मैं जानता हूँ; उन गीतों के बल पर मैं तेरे सामने आने का साहस कर सकता हूँ!
फिर भी, तेरे अतिनिकट जाने में संकोच होता है,
केवल अपने गीतों के पंखों से ही तेरे चरणों का स्पर्श कर पाता हूँ।

प्रभु! गाने के मद में मैं अपने को भूल जाता हूँ, और तुझे 'मित्र' कह कर पुकार उठता हूँ!

तेरी ओर : ७९

[धाय जेंनो मोर शकल भालोबासा]

मेरा सम्पूर्ण प्रेम तुझे लक्ष्य कर दौड़ता है !
मेरी सब आशायें तेरी ओर ही भागती हैं !
जहाँ कहीं भी हो, हे प्रभु, मुझे अपने पास बुलालो, तेरे पास खिचकर आते हुए दूसरे सब बन्धन टूट जायंगे।

बाह्य वस्तुओं की भिक्षा से भरी इस थाली को अब सर्वथा रिक्त करदो और हे प्रभु, अपनी भिक्षा से मेरा अन्तः-करण भरपूर कर दो !

हे जीवन-धन ! मेरे जीवन में जो कुछ शिव-सुन्दर है वह सब आज तेरे ही गीतों से झंकृत हो रहा है !

अपहरण : ८०

[तारा दिनेर बेला एसेछिलो]

उस दिन वे मेरे घर में आये और बोले, "हम एक कोने में
बैठे रहेंगे ?"
उन्होंने यह भी कहा, "देवता की अर्चना में हम तेरी सहायता
करेंगे और पूजा के अनन्तर जो प्रसाद मिलेगा वही ग्रहण
कर सन्तुष्ट रहेंगे।"

इस तरह वे दरिद्री, क्षीण, मलिन वस्त्रधारी मेरे घर के कोने
में बैठ गये;
किन्तु, रात जाने पर वे प्रबल हो उठे; मेरे देवालय में बलात्
धुस गये और उन्होंने मलिन हाथों से देवता की पूजा
का नैवेद्य छीन लिया!

प्रतारणा : ८१

[बरा तोमार नामे बाटेर माझे]

उसने तेरी नाव तक पहुंचने से पूर्व, राह में ही मुझे पकड़ कर
मुझसे पूरी कीमत वसूल करली।

घाट पर पहुँचा तो देखता हूँ कि नदी पार जाने के लिये मेरे
पास एक कौड़ी भी शेष नहीं रही थी।

तेरे ही काम के बहाने उसने मुझे बुलाया और रास्ते में ही
तन-मन-प्राण—मेरे सर्वस्व, का अपहरण कर लिया।

आज जब मैं उन बहुरूपी वंचकों से मिला तो वे अपने असली
वेष में थे, मुझे असहाय देख उन्होंने अपना वेष
उतार दिया था, भय और लज्जा से उनकी आँखें झुकी
हुई नहीं थीं—
आज भी वे सिर ऊँचा उठाकर गर्व से रास्ता रोके खड़े थे!

प्राणों में भय : ८२

[एइ ज्योत्स्ना राते]

आज चांदनी रातों में मेरे प्राण फिर चंचल हो उठे हैं—
सोचता हूँ, तेरे पास बैठने का स्थान मिलेगा क्या ?
क्या तेरा सुन्दर चेहरा देख सकूँगा और क्या मेरे उत्सुक नयन
तेरे नयनों को निर्निमेष देख सकेंगे ?
सोचता हूँ, मेरे गीत-भरे आंसू क्या तेरे चरणों को चिरकाल
स्पर्श करने की आज्ञा पा सकेंगे ?

इस भय से कि कहीं तू स्वयं दिये दान को वापिस न ले ले;
मैं ज़मीन में खन्दक खोदकर अपना चेहरा छिपा
लूँगा।
तूने मेरे हाथ पर हाथ धरे हैं; मुझे भय है, कहीं तूने अब
मुझे पास बुलाकर खड़े होने को कहा तो मेरे प्राणों में
भयंकर दारिद्रय छा जायगा।
सोचता हूँ, कहीं तू अपने दान को वापिस न ले ले !

जल-विहार : ८३

[कथा छिलो एक-तरीते]
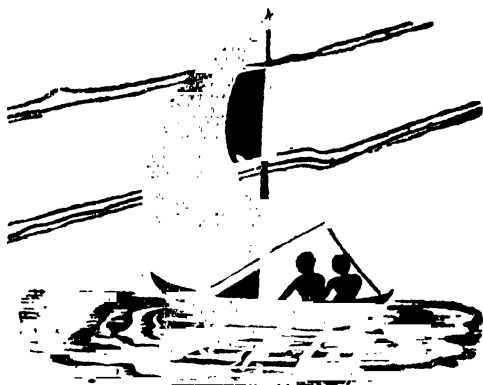
हम दोनों के बीच गुप्त मंत्रणा हुई थी कि एक नौका पर केवल
तू और मैं बैठकर स्वच्छन्द जल-विहार करेंगे;
हमारी तीर्थयात्रा किस देश और किस लक्ष्य के लिये होगी;
इसका भेद विश्व भर में किसी को ज्ञात नहीं होगा !

उस तटहीन सागर में बहते हुए मैं तेरे श्रवणोत्सुक कानों में
गीत कहूँगा। वह गीत सागर की उत्ताल तरंगों के
समान फूट पड़ेगा और शब्दों के बंधन से मुक्त होकर
केवल स्वर-लहरी बन जायगा !

*क्या अभी वह वेला नहीं आई ? अब भी क्या कुछ कर्तव्य-
कर्म शेष हैं ?*

*देखो ! सन्ध्या समुद्र के तट पर उतर आई है और
धुंधले प्रकाश में समुद्र-विहारी पक्षी पंख फड़फड़ाते
हुए अपने घोंसलों में लौट रहे हैं।*

*कौन जाने, यह लंगर की जंजीर कब उठेगी और अस्त होते
सूर्य की अन्तिम किरणों के समान हमारी नाव भी रात
में स्वतन्त्र जल-विहार को कब प्रस्थान करेगी ?*

विश्व-यात्रा : ८४

[आमार एकला घरेर आड़ाल भेङ्गे]

अपने सुनसान घर की दीवार लांघकर, प्राणों के रथ पर बैठ,
कभी विशाल विश्व की यात्रा के लिये मैं बाहर जा
सकूँगा ?

अतिशय मोहवश सबका काम करते हुए मैं दुनियाँ की भूल-
भुलैया में फंस गया हूँ;
आशा-आकांक्षा से भरे सुख-दुख-मय सागर में तैरता हुआ
मैं सागर की तरंगों को अपनी छाती पर झेल
लेता हूँ !
किन्तु फिर, भयंकर तूफानों के आघातों से जर्जर होकर मैं तेरी
गोद में विश्राम लेने दौड़ा आता हूँ !
उस समय विश्व के अपार कोलाहल में केवल तेरा स्वर ही
कानों तक पहुँचता है।

सोचता हूँ—प्राणों के रथ पर बैठ कभी विश्व-यात्रा के लिये
मैं अपने एकांत घर की दीवार लांघकर बाहर जा
सकूँगा ?

विश्व-कमल : ८५

[एका आमि फिरबो ना आर]

अब मैं इस तरह अपने मन के अंधेरे कोनों में, मोहावृत हृदय की संकीर्ण गलियों में अकेला भटकता नहीं रहूँगा।

तुझे निकट समझ मैंने एक ही बाहु से तुझे बांधने का यत्न करने में अपने पाश से अपने को ही बांध लिया!
मेरे विश्व में जब तेरा विस्तार होगा तभी मेरे हृदय में मेरे हृदय-सम्राट् का सिंहासन लगेगा।
मेरा हृदय तो एक छोटा-सा सरोवर है, उस सरोवर में विश्व-कमल खिला है। उस विश्व-कमल पर अपनी आभा से अवतरित होकर मुझे पूरे प्रकाश में अपने दर्शन दे!

[श्रामारे जदि जागाले श्राजि नाथि]

नाथ ! तू अब मेरे घर आया है, कृपा कर अब लौट न जाना !

घनी वन-वीथियों में सावन के मेघ बरस रहे हैं, और रात की पलकें बादलों के भार से झुककर बंद होगई हैं; कृपा कर अब लौट न जाना !

बिजली की गड़गड़ाहट से नींद उचट गई है। अब वर्षा की जल-धारा के स्वर में स्वर मिलाकर गीत गाने की इच्छा हो रही है।
मेरे आंसुओं के कण आकाश के अन्धकार में घूम-घूम कर बड़ी उत्सुकता से कुछ अनुसन्धान कर रहे हैं !

हे नाथ मुझ पर कृपा कर ! लौटकर न जा, लौटकर न जा !

पुष्प की प्रार्थना : ८७

[छिन्न करे लम्रो हे मोरे]

जल्दी करो प्रभु ! इसे तोड़ लो, बिलंब न करो
इतने में कहीं मैं धूल में न गिर पड़ूँ, यही मय है !

इस फूल को तेरी माला में स्थान मिले न मिले, कौन जाने ?
फिर भी, अपने आघात स्पर्श से ही इसे भाग्यवान बना !

तोड़-तोड़ अब विलंब न कर !
दिन पूरा हो जायगा, अंधेरा छा जायगा,
तेरी पूजा का मुहूर्त्त न टल जाय, यही भय है !

जो थोड़ा-बहुत रंग इस फूल पर है, और जिस थोड़ी-सी सुवास-सुधा से इसका हृदय भरा है, जब तक तेरी सेवा का मुहूर्त्त शेष है तब तक इसका उपभोग करले !

तोड़ले, तोड़ले, अब बिलंब न कर !

पुकार : ८८

[चाइ गो आमि तोमारे चाइ]

मुझे तेरी ही चाह है, तेरी ही चाह है; यही शब्द निरन्तर मेरा अन्तःकरण पुकार-पुकार कर कह रहा है !

जो इतर वासनाएं मेरे मन को रात-दिन भटकाती रहती हैं, वे सर्वथा मिथ्या हैं, निःसार हैं और निष्प्रयोजन हैं।
मुझे तो तेरी ही चाह है, प्रभु ! तेरी ही चाह है !

जैसे अंधेरी रात के अंतस्तल में प्रकाश की प्रार्थना छिपी रहती है,
उसी तरह, मेरी घटाटोप वासनाओं में भी मुझे तेरी ही चाह रहती है। अपने अंतर की चेतना में भी मैं निरन्तर यह सुनता हूँ "मुझे तेरी चाह है—तेरी ही चाह है !"

जैसे बादल पूरी शक्ति से शान्ति का आघात करते हुए भी अपने लक्ष्य की प्राप्ति शान्ति में ही समझते हैं,
वैसे ही मेरा विद्रोह तेरे प्रेम पर आघात करता है और पुकार रहा है—'मुझे तेरी चाह है !'

वीर प्रेम : ८९

[आमार ए प्रेम नय तो भीरु]

मेरा यह प्रेम कायर नहीं और बलहीन भी नहीं—
फिर भी यह, व्याकुल होकर आँखों आँसू की बूँद बन क्यों
रह गया ?

आनन्द में पागल होकर वह तेरे साथ बराबर की जगह बैठना
चाहता है।

तू जब भीषण स्वरूप धारण करके तांडव करता है, तो तीव्र
तालों के आघात से जगत डांवाडोल होने लगता है !
मेरा प्रेम भी सन्देह से विह्वल होकर भय और शर्म के मारे दूर
भागने लगता है !

मेरी क्षुद्र आशायें स्वर्ग से रसातल में पहुँच जाती हैं !

निष्ठुर-स्वर : ६०

[आरो आघात सइबे आमार]

मेरी जीवन-वीणा की तारें और भी आघात सहन कर
सकती हैं !
बजा, उसे और भी ऊंचे स्वरों की झंकार में बजा !
जो स्वर तूने मेरे जीवन में बजाने शुरू किये हैं, उनका अंतिम
अवरोह अभी बजाना शेष है !
इसलिये निष्ठुर मूर्च्छनाओं में उस अन्तिम स्वर को हे गायक !
अब मूर्त्तिमन्त कर दे !

केवल करुण कोमल रागनियों में ही मेरा अनुराग नहीं है !
मृदुल स्वरों के खेल में मेरा जीवन व्यर्थ ही नष्ट हो रहा है !
अपनी अग्नि को अब प्रचण्ड शिखाओं में प्रज्वलित कर !
अपने पवन को प्रबल आँधियों में बहने दे !
सारे आकाश को विक्षुब्ध होने दे !

मेरी जीवन-वीणा की तारों पर अपना अंतिम राग निष्ठुर से
निष्ठुर स्वरों में बजने दे !
ये तारें अभी और भी आघात सहन कर सकती हैं !

वज्राघात : ९१

[एइ करेछो भालो]

तूने अच्छा ही किया, निष्ठुर ! तूने अच्छा ही किया !

मेरे हृदय में तूने इतनी प्रचण्ड अग्नि जला दी—इसकी आंच
में यदि मेरा जीवन-पुष्प न जलता तो उसमें सुगन्ध कैसे
भरती ?

मेरा जीवन-दीप यदि इस अग्नि में स्वतः को न जलाता तो
इसकी शिखा में प्रकाश कैसे भरता ?
मेरे अचेतन चित्त को तेरा आघात ही अनुप्राणित करता है,
तेरे कठोर हाथों का स्पर्श ही उसका सम्मान है
गौरव है !

मोह और भय-संकोच की कालिख मेरी आँखों का काजल बन
जाती है, मैं तेरी आँखों से ओझल हो जाता हूँ !
इसलिये इस सारी कालिख को अपने वज्राघात से दीप्तिमान
करदे !
तेरा वज्र इस कालिख को चमकता हुआ हीरा बना सकता है !

देवता का भय : ६२

[देवता जेने दूरे वई दांडाये]

तुझे देवता जानकर मैं दूर खड़ा रहता हूँ—
अपना-सा ही समझकर पास नहीं आता।

तुझे पिता जानकर तेरे चरणों पर झुकता हूँ—
मित्र के समान तेरा हाथ नहीं पकड़ता।

प्रेमवश स्वतः मेरा बनकर जिस मार्ग से तू नीचे उतरता है,
उस पथ पर तुझे मन का मीत मान तेरे संग चलने का
साहस नहीं होता!
प्रभु! तू मेरे सहोदर बन्धु-बान्धवों के समान ही बन्धु है, फिर
भी तेरे निकट नहीं जा पाता।
मैं अपना संपूर्ण धन उन बन्धु-बान्धवों में बांट देता हूँ और
तेरा ही सहभागी बनने को तेरे पास खड़ा हो जाता हूँ।
मैं सुख-दुख के सब क्षणों में भी कभी इतर-जनों के संग नहीं
रहता, तेरे ही संग खड़ा रहता हूँ।
अपने पथ का अंत न पाकर, जब मैं थक जाता हूँ तो भी मैं
जीवन का त्याग करने की इच्छा से प्राण-सागर में गोता
नहीं लगाता।

तुझे देवता जानकर मैं दूर ही खड़ा रहता हूँ, तेरे पास नहीं
जा पाता।

प्रथम भेंट : ६३

[तुमि जे काज करछो]

जो व्यापार तू कर रहा है, मुझे भी उसमें ही क्यों नहीं लगा लेता, प्रभु !
काम के समय तू मुझे नींद से क्यों नहीं जगा लेता !

विश्व-शाला के घटन-विघटन, निर्माण-संहार के अवसर पर मैं तेरे निकट खड़ा था। तभी से तो तुझे पहचानता हूँ।
मुझे स्मरण है, अनादि के एकांत की रहस्य-भरी सन्ध्या में,
जब और कोई पथिक रास्ते में आता-जाता नहीं था,
तेरी मेरी पहली पहचान हुई थी।
उस धुंधले से प्रकाश में तेरी अस्पष्ट-सी मूर्त्ति दिखाई दी थी !
अब वह सपना-सा होगई है !

इसलिये, अब मैं, तुझसे संसार के प्रकट रूपों में, दुनियां के हाट-बाज़ार में, भेंट करने की याचना कर रहा हूँ !

सबके प्रभु : ६४

[बिश्शसाथे जोगे जेथाय बिहारे]

सबके बीच-सब-सा होकर जहां तू विहार करता है, वहीं तेरी-
मेरी भेंट होगी !
वन में, पर्वतों की घाटियों में या अन्तःकरण के एकान्त कोने
में नहीं—
अपितु, जहाँ तू सबके बीच सबका अपना होकर रहेगा, वहीं
मेरा भी अपना होगा !

जहाँ तू सबको अपनी भुजाओं में आविष्ट करने के लिये
बांहें फैलायगा वहीं मेरे हृदय में तेरा प्रेम जाग्रित
होगा।
वह प्रेम घर के अंधेरे कोने में छिपकर नहीं बैठेगा, वह तो
सूर्य के आलोक की तरह सब ओर फैलेगा।

तू सबका आनन्द-घन है, इसीलिये मेरा भी है !
सबका एकसा होने से ही तेरे प्रेम में अमरता है !

मुक्त करो : ९५

[डाको डाको डाको आमारे]

मुझे बुलाओ, बुलाओ, बुलाओ !
अपने स्निग्ध, शीतल, पवित्र, गहन अंधेरे में—
मुझे बुलाओ, बुलाओ, बुलाओ !

दिन भर के तुच्छ विचारों और मन के सहस्रों विकारों से मेरा जीवन धूलि-धूसरित और मलिन होगया है।
अपने स्निग्ध, शीतल, प्रशांत, उदार और अनन्त अंधेरे में बुलाकर, मुझे उस मलिनता से मुक्त करो, मुक्त करो मुक्त करो !

मेरे बाह्य रूप के आवरणों को छिन्न-भिन्न करके, जीवन के अखंड रूप को प्रकट होने दो !

अन्तिम लक्ष्य : ९६

[जेथाइ तोमार लुट हतेछे भुवने]

जग में जहां तेरे प्रेम की लूट हो रही है, वहां जाने को मेरा मन अनायास भागता है।

सूर्य-चन्द्र, सोने की थाली में, प्रकाश के हीरे-मोती बटोर ले जा रहे हैं;
अनन्त आकाश में उनके दाने सब ओर बिखर रहे हैं, वहां जाने को मेरा मन कितना अनायास भागता है ?

जिस सिंहासन पर बैठकर तू अपने भंडार का खज़ाना लुटाता है, वहां मेरा मन कितनी आसानी से जाता है !

जहां तू नित्य-नये रूप में अपने को प्रगट करता है, वही स्थल मेरी जीवन-यात्रा का अन्तिम लक्ष्य है; उसी स्थल पर मुझे तेरे नाम की पुकार करते हुए जाना है !
उस स्थल के लिए मेरा मन कितना अनायास भागता है !

पुरस्कार : ९७

[फुलेर मतन आपनि फुटाओ गान]

हे नाथ! तू मेरे गीतों को फूल के सदृश स्वयं ही खिला देता है।
उन खिले फूलों को देखकर मैं आनन्द में दीवाना-सा हो जाता हूँ और उन्हें अपनी संपत्ति समझ, तेरे चरणों में अर्पित करने का गर्व लिये, तेरे पास आता हूँ।
तुझसे विनती है, नाथ! कि उन स्वयं खिलाये फूलों को प्रेम से हँसकर उठाले—मेरी लाज रखले!

पूजा के बाद यदि ये पुष्प धरती की धूलि में मिल जांय, तो भी परवाह नहीं;
तू अपने हाथों संसार का विपुल धन लुटाता है, तेरे हाथों यह भी नष्ट हो जाय, तो कोई बात नहीं;
ये गीत मेरे जीवन में क्षण भर खिल कर मेरे प्राणों को कृतार्थ कर जाते हैं, मेरे लिये यह पुरस्कार ही बहुत है!

[मुख फिराये रबो तोमारपाने]

मेरे जीवन की एकमात्र कामना है—मेरा मुख सदा तेरी ओर
उठा रहे।

हे प्रभु! इस कामना को विफल न करना!

मैं केवल तुझे देखता रहूँ;
हृदय की व्यथा, आकांक्षा और दिन भर के सब कामों से मेरा
मन अलिप्त रहे!

मेरी विविध कामनायें, विविध दिशाओं में भागती हैं; किन्तु
मेरी यह कामना प्रति रात्रि, प्रति दिवस इसी वेदना से
जाग्रति रहती है, और इसी एक सूत्र में व एक ही आनन्द-
गीत में गुंथी रहती है कि मेरा मुख सदा तेरी ओर
उठा रहे, तेरी ही ओर उठा रहे!

आषाढ़ के मेघ : ६६

[आबार एसे छे आषाढ़]

पुनः आकाश में आषाढ़ के बादल आ गये—
हवा में बरसात की भीनी २ गन्ध रम गई—
मेरा पुरातन हृदय आज नवीन बादलों के कर-स्पर्श से रोमांचित हो झंकार करने लगा !

पुनः आकाश में आषाढ़ के बादल आगये—
विशाल खेतों की हरी-हरी कोंपलों पर बादलों की सांवली छाया पड़ रही है !

'आगये', 'आगये' यही ध्वनि हृदय में गूँज रही है—
'आगये' 'आगये' आंखों में आगये, हृदय में छागये !

यही ध्वनि चारों ओर गूँज रही है—
पुनः आकाश में आषाढ़ के बादल आगये ?

[आज बरशार रूप मानबेर माझे]

आज मनुष्य ने भी वर्षा का चोला पहिना है !
वह भी गरजता हुआ चलता है, भारी अलंकारों से सजा
चलता है, उसका हृदय भी तांडव-नृत्य से क्षुब्ध है।
सब जंजीरों को तोड़कर वह उमड़-घुमड़ कर चल रहा है।
मेघों का वक्ष चीरकर बिजली कड़कड़ा रही है !
आज मनुष्य ने भी वर्षा का चोला पहिना है !

मेघों के दल, झुंड के झुंड एक के पीछे एक जमा होकर
कितनी दूर, कहाँ, क्यों जा रहे हैं, कौन जाने ?
कौन-से आकाश-चुम्बी पर्वत-शिखर पर सावन के मेघ पानी
की वर्षा करेंगे, कुछ पता नहीं !
उनके इस अतुल वैभव में जीवन-मरण कौन-सा भीषण
रहस्य छिपा है—इसका भेद किसी को मालूम नहीं।
आज मनुष्य ने भी बादलों का चोला पहिना है !

आज यह बादलों के दल अज्ञात दिशा में जाकर गंभीर-गहन
स्वर में कौन-सी मंत्रणा कर रहे हैं – कौन जाने ?
दिग्दिगन्त सुदूर कुंजों में निस्तब्ध अंधकार में निःशब्द दुःख
की आहों में कौन-सी भवितव्यता छिपी है, कौन जाने ?

घने घटाटोप अन्धकार की छाया में किस रहस्यमय प्रयोजन में
कौन-सी भीषण कल्पनायें गहन होती आ रही हैं—
कौन कह सकता है ?
आज मनुष्य ने भी बादलों का चोला पहिना है !

दिव्य रस : १०१

[हे मोर देवता, भरिया ए देहप्राण]

हे मेरे देवता !
मेरा जीवन-पात्र अमृत से लबालब भरा है;
तू कौन-से दिव्य रस का पान करना चाहता है ?

हे मेरे कवि ! क्या तू-स्व-निर्मित विश्व-प्रतिमा को ही मेरे नेत्रों में देखना चाहता है ?
और, मेरे कर्ण-कुहरों के समीप चुपचाप ठहर, अपने बनाये गीतों का दिव्य-स्वर स्वयं सुनता ही प्रिय है, क्या ?
तेरी सृष्टि मेरे मन में सुन्दर शब्दों का जाल बुन रही है;
तेरा आनन्दमय प्रेम उन शब्दों में गीत भर रहा है; इसी योग से मेरे गीत प्रस्फुटित होते हैं !

प्रेम-वश तू अपना सर्वस्व मेरे हृदय को अर्पित कर देता है,
और अब अपने समस्त माधुर्य को मेरे अन्तर में देखना चाहता है ?

हे मेरे देवता ! तू कौन-से दिव्य रस का पान करना चाहता है ?

पवित्र प्रकाश : १०२

[इ मोर साध जेनो ए जीवन माझे]

इस जीवन में मेरी यही साध है;
तेरे आन्गाद का महासंगीत मेरी जीवन-वीणा में बजता रहे !

तेरे आकाश के अनन्त प्रकाश की ज्योति मेरे लघुद्वार से लौट कर न जाय !

नित्य नये सिंगार से सजकर सब ऋतुएं मेरे हृदय की रंग-स्थली में मुक्त भाव से नृत्य करती रहें !

मेरे तन-मन की कोई भी वासना तेरे-मेरे बीच परदा बनकर न आए !

तेरा आनन्द, पवित्र प्रकाश बनकर मेरे अन्तर के अन्धकार को दूर करदे !

तेरा आनन्द मेरे दैन्य का आमूल नाश करके मेरे जीवन के सब अनुष्ठानों में व्यक्त हो, विकसित हो !

प्रतिछाया : १०३

[एकला आमि बाहिर होलेम]

प्रियतम !
तुझसे मिलने को मैं अकेला बाहर आया था ।

जाने वह कौन है, जो सुनसान अन्धेरे में मेरे साथ चलने लगा ?
उससे दूर हटने का मैंने बहुत प्रयत्न किया, टेढ़े-तिरछे रास्ते पर भी चला;
कई बार ऐसा प्रतीत हुआ कि वह नहीं रहा, किन्तु फिर उसकी पदध्वनि सुनाई देने लगी ।

वह पृथ्वी पर धूल उड़ाता जाता है, विलक्षण चंचलता है उसमें !
मेरे हर शब्द में वह अपना स्वर मिला देता है;
वह मेरी प्रतिछाया तो नहीं, प्रभु !
वह तो निपट निर्लज्ज है; उसके साथ तेरे द्वार तक आते मुझे लाज आती है ।

प्रियतम ! तुझसे मिलने को मैं अकेला ही बाहर आया था ।

सब के बीच : १०४

[आमि चेये आछि तोमादेर सबापाने]

तू सबके बीच रहता है, मुझे सबके बीच जगह दे !

जहां बैठने का मूल्य नहीं देना पड़ता, जहाँ रेखायें खींचकर
जगह का बटवारा नहीं करना पड़ता;
जहां नापमान का भेद नहीं, वहाँ सबके बीच, सबसे नीचे,
धूलि से भरी ज़मीन पर मुझे बैठने दे !

जहाँ बाहर के आडम्बर नहीं, अपना सच्चा परिचय देने में
लज्जा नहीं; अपनी दीनता को स्वीकार करने में संकोच नहीं,
वहां खड़े होकर, मेरा लज्जा-हीन दैन्य तेरे अतुल-दान
से दूर हो जायगा !

वहीं मुझे सबके बीच जगह दे !

निर्मल पत्र-पुष्प : १०५

[भार आमाय आमि निजेर शिरे]

प्रभु ! आज से मैं अपने ही कन्धों पर अपना भार नहीं
उठाऊँगा !
आज से मैं अपने ही द्वार पर भिक्षा मांगने नहीं आऊँगा !
इस भार को तेरे चरणों के समीप रख दूँगा, और निश्चिन्त
होकर विचरण करूँगा, चिन्ताक्रान्त हो पीछे मुड़कर
नहीं देखूँगा।
मैं अपने ही कन्धों पर अपना भार उठाये नहीं फिरूँगा !

मेरी वासनाओं का पवन जिस-जिस दीपक को छूता है, उसका
प्रकाश क्षण भर में मन्द हो जाता है।

इनमें मलिनता है—इन मैले हाथों का नैवेद्य स्वीकार न
करो !

मेरी वासनाओं में मलिनता है।
निर्मल प्रेम से प्रेरित पत्र-पुष्प को ही स्वीकार करो, प्रभु !

माता का अभिषेक : १०६

[हे मोर चित्त, पुण्य तीर्थे जागो रे धीरे]

हे मेरे चित्त ! इस पुण्य-तीर्थ में धीरे धीरे जाग !
इस भारत के, महा-मानव-सागर के तट पर तू जाग !

यहा खड़ा हो दोनों हाथ जोड़, मैं मानव-देवता को नमस्कार करता हूँ; अपने गीतों से अत्यन्त हर्ष-पूर्वक देवता का अभिनन्दन करता हूँ !

इन ध्यान-मग्न पर्वत-शिखरों पर, और नदियों की जयमाला धारण किये विस्तृत क्षेत्रों पर, इस पवित्र पृथ्वी पर, भारत के महा-मानव-सागर के तट पर तू उसका नित्य अवलोकन कर !

किससे आमन्त्रित, कितना जन-प्रवाह अनवरत स्रोतों से उठकर आया और समुद्र में विलीन होगया—यह किसी को ज्ञात नहीं।
यहाँ आर्य, अनार्य, द्रविड़, चीन, शक, हूण, पठान, मुगल— ये सब एक ही सागर में विलीन होगये।
आज पश्चिम का द्वार खुला है। आदान-प्रदान का क्रम चल रहा है; वे हममें समा रहे हैं, हम उनमें एकाकार हो रहे हैं।

जो लोग रणक्षेत्रों में रक्त बहाकर, उन्मत्त कोलाहल करते
व जयगान गाते, दुर्गम मार्गों से, गिरि-पर्वतों को लाँघते
आये थे, वे सब हमारे बीच विराजमान हैं, कोई भी
हमसे दूर नहीं—उनके विविध स्वर मेरे रक्त में ध्वनित
होते रहे हैं !

हे रुद्र-वीणा, तू बज, बज, बज !
एक स्वर से बज !
अखंड 'ओ३म्' की महाध्वनि हृदय की तारों पर एकता के
महामन्त्र के साथ झनझना उठी है ।
हमने एकता की अग्नि के यज्ञ में अनेकता की आहुति देकर,
भेद-भाव त्याग, एक विराट् हृदय को जाग्रित किया है ।
आज उसी की साधना के और आराधना के यज्ञ-भवन का
द्वार खुला है ।
यहां भारत के महा-मानव-सागर-तट पर एक भाव से सब का
मस्तक नत हो गया है ।
वह देख, इस होमाग्नि में दुखों की लाल लपटें उठ रही हैं—
मर्म-स्थान का दाह भी सहन करना होगा, यह देवताओं
की वाणी है ।
हे मेरे मन, यह दुःख सहन कर, एकता की पुकार सुन !

सारी लाज, सारे भय छोड़ दे !
इस दुःसह व्यथा का अन्त करने के लिये ही इतने विशाल
प्राण का निर्माण होगा !
रात्रि के बाद प्रभात का उदय होगा !

विशाल-विश्व में भारत के महा-मानव-तट पर जननी जागी है !

आओ, हे आर्यों, हे अनार्यों आओ, अंग्रेजों, ईसाईयों, आओ !
हे ब्राह्मण, आ ! मन शुद्ध कर और सबका हाथ पकड़ !
हे हरिजन, आ ! और अपने समस्त अपमान-भार को हल्का करले !

माता का अभिषेक करने शीघ्र आ, आ !
सबके स्पर्श से पवित्र हुए तीर्थ-जल से आज भारत के महा-मानव के सागर-तीरथ का मंगल-घट भर गया है !
उससे माता का अभिषेक करने शीघ्र आ ?

[जेथाय थाके शबार अधम]

नाथ ! जहाँ सबसे अधम; दीनों के दीन जन रहते हैं, वहाँ सबसे पिछड़े और सबसे तिरस्कृत लोगों के मध्य तेरे चरण विराजमान हैं।

जब मैं तुझे प्रणाम करता हूँ, तब मेरा विनत मस्तक-नमन की सीमा तक पहुँचकर भी तेरी चरण-पीठिका तक नहीं पहुँच पाता।

क्योंकि, तेरे चरण सबसे निम्न और दीन जनों के मध्य स्थित हैं। मेरा मस्तक झुककर भी तेरे चरणों की सतह तक नहीं पहुँचता !

जहां तू दीन जनों के दरिद्रवेष में सर्व-दलित, सर्व-तिरस्कृत, अति दीन जनों के मध्य संचार करता है, वहां मेरा अहंकार नहीं पहुँच ा।

धन-मान संपन्नों के मध्य मैं तुझे पाने की आशा करता हूँ; किन्तु, तेरा साहचर्य तो उनसे है जिनका कोई और सहचर नहीं !

उन सर्वदलित, तिरस्कृत और दीनों के दीन जनों तक मेरा हृदय नहीं पहुँच पाता !

मंगल-मार्ग : १०८

[हे मोर दुर्भागादेश]

हे मेरे अभागे देश ! तूने जिस जन-समुदाय का जैसा अपमान
किया था, उसका वैसा ही बदला मिला है तुझे ! जिनके
मानवीय अधिकारों की अवज्ञा की थी; जिन्हें अपने
साथ बैठने का मान नहीं दिया था, उनके अपमान का
प्रतिकार मिल गया तुझे !

मनुष्य को स्पर्श के योग्य न समझ तूने मनुष्य में स्थित देवता
का अपमान किया है। विधाता के क्षोभ-भरे दुष्काल-
द्वार पर बैठ तुझे सबके साथ अन्न-पानी का समभागी
होना पड़ेगा। यही तेरी अवज्ञा का दण्ड होगा !

अपने ऊँचे आसन से तूने उन्हें नीचे धकेल दिया—उनकी
शक्ति का अनुमान नहीं लगाया। अब तू नीचे उतर,
अन्यथा तेरे परित्राण की आशा नहीं।

जिन्हें तूने नीचे उतारा है वे तुझे भी नीचे ही बांधे हुए हैं,
जिन्हें तूने पीछे धकेल दिया है वे अब तुझे पीछे खींच
रहे हैं।
इसलिए अपना उत्कर्ष चाहता है तो पहले उनका उत्कर्ष कर,
यही तेरी अवज्ञा का प्रतिशोध है।

अज्ञानान्धकार के परदे में जिन्हें तूने डाल दिया है उन्होंने भी
तेरे मंगल-मार्ग में प्रगाढ़ आवरण डाल दिये हैं।
सैकड़ों सदियों से तेरे कन्धों पर अपमान का भार
पड़ा है; तब भी तूने जनता-जनार्दन को नमस्कार नहीं
किया।

दीन-हीनों का भगवान पृथ्वी पर उतरा है। वह हमारे नेत्रों में
आसीन है, अभी तुझे दिखता नहीं क्या? तेरा जातीय
अहंकार अभिशप्त हो चुका है। तू सब से पिछड़ गया।
और अपनी रक्षा के लिये झूठे अभिमान की रेखायें
खींच रहा है!

जयकार : १०९

[छाड़िस ने धरे थाक ऐंटे]

अरे, अब भय नहीं —
जय हो, तेरो जय हो !
अब तेरा अवलंब नहीं छोड़ूँगा, दृढ़ता से पकड़ रखूंगा।

अब अन्धकार का परदा हटने को है—
वह देख ! पूर्व दिशा के मस्तक पर, निविड वर्यों के पीछे, शुक्र-तारा निकल आया; अब भय नहीं !
निराशा, आलस, संशय—ये रात के सहचर हैं, प्रभात के नहीं; अपने पर ही उनका भरोसा नहीं है।

आ, दौड़ कर आ ! बाहिर आ ! ध्यान से देख ! आँख उठा कर देख, आकाश तेज-पुंज हो रहा है।

अरे अब भय नहीं है —
जय हो तेरी जय हो !

हृदय-कोष : ११०

[आछो आमार हृदय भायो भरे]

तू मेरे हृदय में पूर्ण रूप से समा गया है; इसलिये अब जो जी
में आये वह कर।
जब तूने मेरे अन्दर के खज़ाने पर अधिकार किया है, तो
बाहर का भी सब कुछ अपने हाथ में ले ले।
इस तरह मेरी सब तृष्णाओं का अन्त होगा, तभी तू
मेरे प्राणों को अपनी परितृप्ति से भरेगा।
इसके बाद कोई चिन्ता नहीं, संसार में टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर
अंगार भी बरसें तो बरसने दे।

विविध रूपों में इस तरह जो तू खेल खेलता है, वह मुझे
रुचिकर है।
एक की आँखों में तू आँसू भरता है तो दूसरे की आँखों में
हास्य!
कई बार ऐसा लगता है कि मेरा सब कुछ लुट गया, तभी
तुझसे भेंट होती है और मुझे लगता है जो लुटा था
उससे भी अधिक मिल गया।
एक हाथ से तू मुझे सिर से उतार कर नीचे पटक देता है,
पर, दूसरे हाथ से उठाकर छाती से लगा लेता है!
तू मेरे हृदय-कोष में पूर्ण रूप से समा गया है, इसलिये अब
जो जी में आये वह कर!

गर्व-रहित : १११

[गर्व करे निइ ने ओ नाम]

गर्व-भरे दिल से मैं तेरा नाम लेता हूँ ?—नहीं;
यह तू जानता ही है, नाथ !

मेरे मुख पर तेरा नाम कितनी शोभा देता है, इसलिये तो लेता हूँ;
जब सब जन मेरा उपहास करते हैं, तब भी मैं विचार करता हूँ—
मेरे मुख पर तेरा नाम कितना अच्छा लगता है, इसलिये तो लेता हूँ।

तुझसे मैं बहुत दूर हूँ, यह जानता हूँ।
तेरे नाम-संकीर्तन में ही व्यस्त हुआ मैं अपना परिचय आप नहीं कर पाता हूँ। कई बार इस शर्म से मैं मन ही मन डूब जाता हूँ।
मेरा अहंकार ही मुझे डुबोता है; लज्जित करता है। इस खोटे अहंकार से मेरी रक्षा कर ! मेरे योग्य जो स्थान हो वहीं मुझे बिठा !

दूसरों की आलोचनाओं से मुझे दूर कर और अपने नत-नयनों का वरदान दे !

मेरी पूजा केवल तेरी दया प्राप्त करने के अर्थ है। किसी भी
दूसरे की दृष्टि में उस पूजा को मान मिले या न मिले,
मुझे परवाह नहीं!
धूलि में बैठा-बैठा मैं नित्य-नये अपराध करता हुआ भी तुझे
ही पुकारता रहता हूँ—गर्व-भरे दिल से तेरा नाम नहीं
लेता—यह तो तू जानता ही है नाथ!

अंतिम श्रृंगार : ११२

[कै बोले सब फेले जाबि]

कौन कहता है कि जब मृत्यु अपने पंजों से मेरा आँचल पकड़ेगी
तो मुझे सब छोड़कर उसके साथ जाना होगा ?

जीवन में आते हुए जो कुछ तू साथ लाया था, वह सब मृत्यु
में जाते हुए साथ ही ले जाना होगा !
इन भरे भंडारों में आकर तू, आखिर खाली हाथ कैसे
जायगा ?

साथ ले जाने योग्य जो कुछ भी तेरे पास है, वह सब सुन्दर
रीति से समेट कर साथ ले चल !
हाँ, व्यर्थ के कूडे-कचरे का जो ढेर तूने जमा कर लिया है, वह
जाते समय नष्ट करदे !

इस पृथ्वी पर जिस सज्जा से आया था, वैसे ही श्रृंगार से
अपने को सजाले और मृत्यु के दरबार में भी राजसी
वेष-भूषा धारण कर हंसता हुआ चल !

[नदी पारेर एइ आषाढ़ेर]

हे पथिक! नदी के पार आषाढ़ का यह प्रभात-सौन्दर्य हृदय में भर ले!
सुनहरी रंग में हरा और नीला रंग मिलाकर यह मधुर-सुधा तैयार हुई है। आकाश में उसके सिंचन से दिव्य-गुञ्जन पैदा हुआ है—
उस सुधा और उस गुंजन को तू अपने प्राणों में भरले!

इस तरह संसार के किनारे चलते-चलते दोनों ओर लगी फूलों की फुलवारी से फूल चुनता हुआ, हे पथिक, अपनी यात्रा पूरी कर!
उन फूलों को चुनकर तू अपने हृदय में रात-दिन श्रम करके माला बना; यह तेरा भाग्य है कि तेरी हाथों यह पुष्प-माला तैयार हो रही है!

हे पथिक! तू अपने प्राणों में प्रभात के इस सौन्दर्य को भरले!

संचित-धन : ११४

[मरण जेदिन दिनेर शेषे]

दिन ढलते समय मृत्यु जब तेरे द्वार पर आयेगी, तू उसे कौन सी भेंट देगा ?
मेरे प्राणों का सागर रत्नों से भरपूर है, वे सब रत्न उसके आगे रख दूँगा।
जिस दिन मृत्यु के दूत मेरे द्वार पर आयेंगे उस दिन उन्हें खाली हाथ वापिस नही भेजूँगा

शरत, वसंत, संध्या, प्रभात, दिवस, रात्रि-रूपी वाटिका के पुष्पों से संचित रसों का भंडार मेरे जीवन-पात्र में भरा है;
सुख-दुख, छाया-प्रकाश के विविध पत्र-पुष्पों से मेरा अंतःकरण सज्जित है;
जितना संचित धन मेरे पास है, जो कुछ भी मैंने इतने दिनों संग्रह किया है—
वह सब संचित धन सजाकर अपनी जीवन-यात्रा के अन्तिम दिन, जब मृत्यु मेरे द्वार पर आयेगी तो मैं उसके आगे रख दूँगा।

[दया कोरे इच्छा कोरे]

मेरे छोटे से घर में तू स्वयं अपने को छोटा कर लेता है !

तेरी माधुर्य-सुधा से ही मेरी नयन-क्षुधा शान्त होती है।

कितने ही रूपों में तू मेरा बनता है ! बन्धु, पिता, माता—
सब रूपों में तू स्वयं छोटा बनकर मेरे हृदय में आ
जाता है।

मैं अब क्या अपने हाथों तेरे विश्व-व्याप्त रूप को और भी
छोटा करूँ ? तुझे अब छोटे सम्बन्धों से क्या पह-
चानूँ ? और, तुझे कैसे उन सम्बन्धों द्वारा अपनी पहचान
करने दूँ ?

हे मेरे मरण ! : ११६

[ओगो आमार एइ जीवनेर शेष परिपूर्णता]

हे मेरे जीवन की अन्तिम साध !
हे मेरे मरण ! आ और मुझसे बात कर !
मैं जन्म-भर तेरे लिये जागता रहा, जन्म-भर तेरे लिये ही सुख-
दुःख का भार अपने कन्धों पर उठाकर घूमता रहा हूँ।
हे मेरे मरण ! आ और मुझसे बात कर !

जो कुछ मैं हूँ, ज कुछ मेरा है;
अपने जीवन में मैंने जो कुछ किया है;
मेरा प्रेम, मेरी आशा—सब रहस्यपूर्ण पथ से तेरी दिशा में ही
बढ़ रहे हैं !
तेरी अन्तिम एक दृष्टि पर मेरा सम्पूर्ण जीवन अर्पित हो
जायगा !

फूलों का चयन हो चुका;
वरमाला बन चुकी;
तू कब वर की सुन्दर वेष-भूषा पहन कर शान्त मुस्कान के साथ
आयेगा !
उस दिन के बाद नव-वधू बन कर मैं अपना निवास छोड़ दूँगा
और रात्रि के एकान्त में पति-पत्नी की भेंट होगी !
तब मैं-तू का भेद हीं रहेगा !
हे मेरे मरण ! आ और मुझसे बात कर !

दूर देश की यात्रा : ११७

[जात्री आमि ओरे]

मैं दूर देश का यात्री हूँ !

मुझे कोई रोक कर बिठा नहीं सकता। सुख-दुख के सब बन्धन मिथ्या हैं।

घर की दीवारें भी मुझे कहाँ तक बाँधेंगी ? विषयों का जाल भी केवल मेरी देह पर यों ही पड़ा है। उसकी एक-एक तार टूटकर बिखर जायगी।

मैं दूर देश का यात्री हूँ ! पथ पर चलते हुए मैं जी भर गाने
गाता चलता हूँ। मेरे देह-दुर्ग के सब द्वार खुले हैं।
वासनाओं की जंजीरें टूट गईं हैं। पाप-पुण्य की भंवरों से
मैं निकल चुका हूँ।

मैं दूर देश का यात्री हूँ !
मेरे सब भार हल्के होगये ! आंकाश में किसी अज्ञात के
निःशब्द गीत का स्वर मुझे बुला रहा है; किसी की
वंशी का गम्भीर गुंजन सुबह-शाम मेरे प्राणों को अपनी
ओर बरबस खींच रहा है।

मैं दूर देश का यात्री हूँ !
मैं रात के किस पहर बाहर आया, कौन जाने ? उस समय
कोई पक्षी अपने गीत नहीं गा रहा था। रात कितनी
बीत गई थी, मालूम नहीं। हाँ, एक निर्निमेष नयन ही
उस अंधकार में जाग रहे थे।

मैं दूर देश का यात्री हूँ !
किस दिन की अन्तिम घड़ियों में मुझे किस घर पहुँचना है,
कौन जाने ? वहाँ कौन से तारे दीपक को प्रदीप्त करेंगे,
कौन-से फूलों की सुगन्ध से वायु चंचल हो उठेगी,
कौन-सा अनादि काल अपने स्निग्ध नेत्रों से वहां मेरी
प्रतीक्षा कर रहा है—कौन जाने ?
मैं दूर देश का यात्री हूँ, मुझे कौन रोक सकता है ?

आकाश-रथ : ११८

[उड़िये ध्वजा अभ्रभेदी रथे]

यह कौन आया है ? देख तो यह कौन आया है ?
बाहर, मार्ग में अपने अभ्रभेदी रथ पर बैठा, अपनी ध्वजा फहराता हुआ यह कौन आया है ?

आ ! दौड़कर आ ! उसके रथ की डोरी संभाल। तू घर के कोने में क्यों छिपा बैठा है। भीड़ में घुसकर अपने लिये किसी तरह जगह बना और उसे देख !
आज घर के काम छोड़दे। तन-मन का मोह छोड़कर, प्राणों की माया त्याग कर उसके रथ की डोर संभाल।

अंधकार में, प्रकाश में, नगर में, खेत में; वन में, पर्वत में उसी की ध्वजा फहरा रही है। उसके चक्र की ध्वनि क्या तेरे अन्तःकरण तक नहीं पहुंची ?
तेरे रक्त के बिन्दु-बिन्दु में क्या उसका पुलक नहीं पहुंचा ?
तेरा मन क्या मृत्युंजयी गीत नहीं गाता ?
तेरी आकांक्षा क्या विस्तीर्ण भविष्य-काल की ओर वेग से अग्रसर नहीं हो रही ?

[भजन पूजन साधन आराधना]

पुजारी ! भजन, पूजन, साधन, आराधना, इन सबको किनारे रखदे ।

द्वार बन्द करके देवालय के कोने में क्यों बैठा है ?
अपने मन के अंधकार में छुपा बैठा, तू कौन-सी पूजा में मग्न है ?
आँखें खोलकर ज़रा देख तो सही, तेरा देवता देवालय में नहीं है !

जहाँ कठोर ज़मीन को नरम करके किसान खेती कर रहा है;
जहाँ मज़दूर पत्थर फोड़कर रास्ता तैयार रहे हैं;
तेरा देवता वहीं चला गया है !

वे धूप-बरसात में सदा एक समान तपते-झुलसते हैं;
उनके दोनों हाथ मिट्टी में सने हैं;
उनके पास जाना है तो सुन्दर परिधान त्याग कर मिट्टी-भरे रास्तों से जा !

तेरा देवता देवालय में नहीं है, भजन, पूजन, साधन को किनारे रखदे !

सीमा में असीम : १२०

[सीमार माझे, असीम तुमि]

हे असीम ! सीमा में भी तेरा ही स्वर ध्वनित हो रहा है !
मेरे अंतःकरण में भी तेरा ही मोहक प्रकाश है !
हे रूपरहित ! कितने ही रंगों, गन्धों, गीतों, छन्दों आदि
तेरे रूपों में, तेरी लीला का विस्तार मेरे हृदय में
भरा है ।
इसीलिये तो मेरे अन्तर में तेरी शोभा इतनी आकर्षक है !

तेरा-मेरा मिलन होगा तो सब अवरोध दूर हो जायंगे ।
विश्व-सागर की तरंगों का ऐसा ज्वार उठेगा कि पृथ्वी हिल
जायगी !
तेरे प्रकाश में छाया नहीं है—मेरे अंतःकरण में ही उसे
काया मिलती है !
मेरे आँसुओ में ही वह विह्वल और सुन्दर होता है;
मेरे अन्तर में इसीलिये तेरी शोभा इतनी आकर्षक है !

तेरा आनन्द मेरे अधीन : १२१

[ताइ तोमार आनन्द आमार पर]

तेरा आनन्द मुझ पर ही तो अवलंबित है !
तू मुझसे ही मिलने को तो नीचे उतरा है !
हे भुवनेश्वर! मैं न होता तो तेरा प्रेम कहाँ रहता?

मुझे तूने अपने जग-वैभव का भागीदर बनाया है, मेरा हृदय तेरी अनन्त क्रीड़ा-भूमि है।
मेरे जीवन में तेरी ही लील विविध रूपों में व्यक्त हो रही है।
मेरे हृदय को जीतने के लिये ही तू सुन्दर अलंकारों से अपने को सजाता है।

तेरा प्रेम भक्तों के प्रमार्त्त हृदय में बसता है। तेरी मूर्त्ति पूर्ण मिलन की घड़ी में भी सबसे पृथक् प्रकाशित होती है।

रिक्तपात्र : १२२

[मानेर आसन, आराम-शयन]

आदर का आसन और आराम की शैया तेरे भाग्य में नहीं !
उनका लोभ छोड़, आनन्द-मग्न हो अपनी राह पर
चलता जा !

आ, सर्वजन से मिलने बाहर आ ! आज के सम्मेलन में मैं
अमानितों से अपना घर भरूँगा ।
आज अपनी निन्दा को ही भूषण मान, उनका परिधान बना
लूँगा; आज काँटों का कंठहार बनाऊँगा ।
आज अपमान का भार अपने कन्धों पर डाल लूँगा और
अत्यन्त दुःखी मनुष्यों के घरों की धूलि पर बैठकर विश्राम
करूँगा !

आज त्याग के रिक्त पात्रों को आनन्द-रस से भर लूँगा !

प्रभुगृह के सैनिक : १२३

[प्रभुगृह इते आसिले जेदिन]

जिस दिन वे वीर सैनिक अपने प्रभु के घर से आये !
उस दिन से उनकी प्रचण्ड शक्ति न जाने कहाँ लुप्त हो गई !
उनके हथियार कहाँ गये ? उनका शौर्य कहाँ गया ?
वे क्षीण और असहाय से होगये। उसी दिन से उनपर चारों
दिशाओं से प्रहार होने लगा। उनकी प्रचंड शक्ति न
जाने कहाँ खोगई ? धनुष, बाण, तलवार कहाँ गये ?

फिर, जब वही सैनिक प्रभु-गृह को वापिस गये तब उनके
चेहरों पर प्रशांत आनन्द चमक रहा था।
अपने संसारी जीवन के फलाफल को त्याग कर वे प्रभु-गृह में
वापिस जा रहे थे !

नवीन पथरेखा : १२४

[भेबेछिनु मने जा हबार तारि शेषे]

एक दिन मेरे मन में विचार आया—
जो कुछ होना था सब हो चुका, मेरी यात्रा का अंतिम पड़ाव आगया।
मुझे प्रतीत हुआ, अब आगे मार्ग नहीं है, मैं अपनी मंजिल पर पहुँच चुका।
अब प्रयास का कोई प्रयोजन ही नहीं रहा, पाथेय भी समाप्त होगया।
समय आ गया है कि अब थके-हारे जीवन को विश्रान्ति मिले।
इन फटे-पुराने चिथड़ों के साथ-साथ मैं आगे जा भी कैसे सकता हूँ?

किन्तु आज देखता हूँ—
तेरी लीला का कोई अंत नहीं, नवीनता की कोई सीमा नहीं!
अपने नये मनोरथ पूरे करने के लिये तूने मुझे फिर नया जीवन दे दिया!
मेरे गीत के पुराने स्वर जब अपना माधुर्य खो बैठे तो वही नये गानों के स्वर में हृदय के स्रोत से फूट उठे!
और, जब पुरानी पथरेखा लुप्त होगई तो नये-नये मार्गों की दृश्यावलि आँखों के आगे नाचने लगी!

अलंकार हीन : १२५

[आमार ए गान छेड़ेछे तार]

स्वामी ! मेरे गीत ने अपने सब अलंकार उतार दिये हैं ।
तेरे समक्ष उसने वस्त्र-परिधान का अहंकार भी नहीं रखा ।
अलंकार-आभूषण तेरे-मेरे मध्य पूर्ण मिलन में रुकावट डालते हैं ।
उनकी चंचल झनझनाहट में तेरे गीतों का स्वर लुप्त हो जाता है ।

तेरे सामने, अपने गायक होने का मेरा अभिमान शोभा नहीं देता ।
हे महाकवि ! मैं तेरी शरण में आने का प्रार्थी हूँ ।
मेरे जीवन को बांसुरी के समान सरल करदे !
और, उस बांसुरी के सभी छिद्रों में अपने गीतों का स्वर भर दे !

धूलि का आसन : १२६

[निन्दा दुःख अपमान]

निन्दा, दुःख व अपमान के कितने आघात हुए—उन्हें भूलने
का कोई उपचार नहीं, यह मैं जानता हूँ।

जब मैं धूलि पर बैठता हूँ तो आसन पाने का तो लोभ ही
नहीं होता,
जब दीन होता हूँ तो निःसंकोच तेरे प्रसाद की ही कामना
करता हूँ।

लोग जब मेरी स्तुति करते हैं, और सुख-दुःख से मुझे उपकृत
करते हैं तब वह सुख-भार उठाकर मैं इतस्ततः भटकता
रहता हूँ।
तेरे समीप आने का मुझे अवकाश ही नहीं मिलता।

राजसी भेष : १२७

[राजार मतो बेशे तुमि]

राजसी ठाठ-बाउ के परिधान और हीरे-मोतियों के हार पहना कर, बालकों के क्रीड़ा-विनोद का आनन्द क्यों छीनता है?

वस्त्र और आभूषणों का भार उन्हें खेलने से रोकता है।

हमारे वस्त्र-भूषण जन-संपर्क में फट न जांय, धूलि-धूसर न हो जांय, इस डर से वे अपने साथियों से दूर रहते हैं।

राजसी साज-बाज के कपड़ों से जिन बालकों को तुम सजाते हो, और जिन्हें मोती-हीरोंकी की मालाओं से मंडित करते हो, उन्हें खुलकर खेलने में अनेक तरह के डर सताते हैं!

माता! बालकों को राजा की तरह सजाने या हार पहिनाने से क्या होगा?

द्वार खोल दे, बालकों को बाहर आकर, रास्ते की धूप-वर्षा, धूलि में लोटने दे!

उसे जनता के समूह में मिलकर नाना प्रकार के खेल खेलने दे!

चारों दिशाओं से शतशः मधुर संगीत-स्वरों की गूंज आ रही है—उस स्वर में स्वर मिलाकर बालक को गाने दे!

संवादी-विसंवादी : १२८

[जड़िबे गेछे सरु मोटा]

मेरी जीवन-वीणा में दो तरह की लहरें लगी हैं, एक सूक्ष्म
दूसरी स्थूल। वह वीणा संवादी स्वरों में नहीं बजती।
दोनों तारों का स्वर विषम, विसंवादी रहता है।
इस विषमता में मेरे प्राण व्याकुल हो उठे हैं। इसलिये मेरे
गीत बिलकुल बंद होगये हैं।
मेरी जीवन-वीणा मधुर स्वरों में नहीं बजती।

तेरे दरबार के रास्ते पर आकर मैं लज्जा से विह्वल होगया,
यह वेदना मुझे चैन नहीं लेने देती!
तेरी सभा के गुणी रत्नों में बैठने की योग्यता मुझमें कहाँ है?
मैं सबसे पीछे, द्वार के बाहिर ही खड़ा रहा!

मेरी जीवन-वीणा सम-स्वरों में नहीं बजती!

दरिद्र प्राण : १२९

[गाबार मतो हय कि कोनो गान]

मेरे पास गाने के लिये कोई गीत नहीं, और देने के लिये कोई भेंट नहीं।
मन में जो कुछ है वह नैवेद्य-योग्य नहीं, केवल मुग्ध भाव से मैं तेरे द्वार पर आ रहा हूँ।

मेरे जीवन के क्षण वेग से भागे जा रहे हैं, इस जीवन में तेरी पूजा कैसे समाप्त होगी?

इतर जनों की सेवा करते हुए मैं अपने दैन्य को छिपाने के लिये झूठे और खोटे अलंकारों का अर्घ्य दे देता हूं;
किन्तु, तुझसे क्या छिपाऊँ? तेरे सामने कुछ भी गुप्त नहीं।
इसलिये तेरी पूजा में इतना बिलंब हुआ;
और, इसलिये अपने दरिद्र प्राणों की भेंट लेकर ही तेरे चरणों पर अर्पित करने आया हूं!

मुझमें तेरी लीला : १२०

[आमार माझे तोमार लीला]

मेरे जीवन में तेरी लीला प्रगट होने को है—
इसीलिये मैं जगत में आया हूँ ।

इस घर के सब द्वार खुले होंग, सारा अहंकार नष्ट हो जायगा,
इस आनन्दमय संसार में किसी भी वस्तु पर स्वत्व
नहीं रहेगा, तभी मुझमें तेरी लीला प्रगट होगी !

तब मेरी समस्त वासनायें तेरे उत्कट प्रेम में डूबकर पूर्ण विराम
पा लेंगी;

और, इस दुःख-सुख-मय विचित्र जीवन में तेरे सिवाय कोई
अवलंब शेष न रहेगा !

[दुःस्वप्न कोथा हते एसे]

कहीं से दुःस्वप्न आकर मेरे जीवन में उथल-पुथल मचा
जाते हैं।
मेरा मन क्रन्दन कर उठता है, किन्तु अन्त में जाग्रित होकर
देखता हूँ कि कुछ नहीं था;
ऐसा लगता है कि कोई दूसरा था, इसलिये मैं भय से विह्वल-
कातर हो उठता हूँ, किन्तु तुझे ही हंसता देखकर समझ
जाता हूँ कि तूने ही मुझे ठगा था!

यह जीवन हमें सुख, दुःख, भय, आदि के हिंडोले में झुला
रहा है; इसके सिवाय कुछ भी मेरे जीवन में नहीं है!

किन्तु प्रभातकाल के प्रकाश में मेरी आँखों का अन्धेरा क्षण
भर में दूर होगया और तेरे परिपूर्ण दर्शन के बाद वह
सब कल्लोल-कोलाहल—वे सारे मन के संशय-भय—
दूर होगये!

अन्तिम प्रसाद : १३२

[गान दिये जे तोमाय खुंजि]

जन्म-भर अपने गीतों से मैं अपने अन्तःकरण व जगत के दिशा-दिशांतर में तेरी खोज करता रहा हूँ !

मेरे गीत मुझे घर-घर, द्वार-द्वार ले जाते रहे। इन गीतों द्वारा मैंने कितनी ही बार तेरा संदेश दिया, कितने ही गुप्त रहस्यों का उद्घाटन किया, हृदय-गगन के कितने ही तारों से मेरा परिचय हुआ !

नानाविधि सुख-दुःख-भरे प्रदेशों में मेरे गीतों ने भ्रमण किया और अन्त में सन्ध्याकाल की वेला में अपना प्रसाद पाने के लिये ये गीत तेरे समीप आये हैं !

अनन्त शोध : १३३

[तोमाय खोंजा शेष हबे ना मोर]

अपने जीवन का अन्त आता देख; अब मुझसे तेरी खोज का काम पूरा नहीं होगा।

मैं अब नये जीवन के प्रदेशों में जाऊँगा, वहाँ मेरे नेत्र नये-नये दृश्य देखेंगे, नये प्रकाश से मैं भी नवीन होऊँगा, और तुझे नव-मिलन की राखी बांधूंगा !

तेरा अन्त नहीं, प्रभु ! तेरा अन्त नहीं। तेरी ही नई-नई लीला नये-नये रूपों में प्रकट हो रही है। न मालूम किस वेष में आकर तू हँसता हुआ रास्ते पर मिल जायगा।

जब मैं नई भावनाओं की तन्द्रा में होऊँगा, तब तू पास आकर मेरे हाथ पकड़ लेगा।

यह देखकर अब अब मुझसे तेरी शोध का काम पूरा नहीं होगा!

नीरव गीत : १३४

[जेनो शेष गाने मोर सब रागिणी पुरे]

मेरे अन्तिम गीत में सारी रागिनियाँ पूर्ण होती हैं!
उस गीत के स्वर में मेरे हृदय का सम्पूर्ण आनन्द व्यक्त है।

जिस आनन्द से पृथ्वी वृक्षों की डालियों के संग झूम उठती है;
जिस आनन्द से जीवन और मृत्यु, दोनों सहोदर भाई, परस्पर ओत-प्रोत हो जगत की रंगशाला में नृत्य कर रहे हैं;
वही आनन्द, इस रागिनी के स्वरों से व्यक्त होता है!

जो आनन्द बादलों और आँधियों के संग रहता है, और अलसाये उदास जीवनों में हास्य की विद्युत् भर देता है;
जो आनन्द दुखों के रक्तिम कमल-पत्रों पर आँसू के समान मौन भाव से विराजता है;
और, जो आनन्द अपना सर्वस्व धूलि में मिलाकर निःशब्द और निर्लेप रहता है,
वही आनन्द इस रागिनि के स्वरों से व्यक्त होता है!

मुक्ति-बन्धन : १३५

[अखन आमाय बांधो आगे पिछे]

तूने मुझे आगे-पीछे से बांध दिया, अब मेरी मुक्ति कैसे
होगी ?
तूने मुझे नीचे ढकेल दिया, अब किस आधार पर खड़ा
रहूँगा ?

फिर से तू ही मेरे बन्धन काटता है और मुझे नीच से ऊपर
उठाता है।
इस प्रकार अपनी भुजाओं के हिंडोले में तू ही मुझे जन्म-भर
झुलाता है।

भय दिखाकर तू ही मेरी निन्द्रा का भंग करता है, और फिर
निन्द्रामग्न करके भय नष्ट करता है।
अपने दर्शन देकर तू ही प्राणों में विचरता है और फिर न
जाने कहाँ लुप्त हो जाता है ?

मन में आता है कि अब मैं हार कर बैठ जाऊँ, न जाने कहाँ
अब तू मुझे ले जायगा ?

[जतो काल तुइ शिशुर मतो]

जब तक तू शिशु-सा शक्तिहीन है तब तक अंतकरण के
अंतःपुर में ही निवास कर !
अभी छोटे-से घाव से तू मूर्च्छित हो जायगा, छोटे-से दाह से
तू भस्म हो जायगा, देह पर थोड़ी-सी धूल से रो
उठेगा, इसलिये तब तक तू अन्तःपुर में रहना !

तुझमें जब शक्ति आयेगी, प्राणों का संचार होगा; तू प्रभु
की बलदा-सुधा का पान करेगा, तब तूने बाहर जाना।
तब तू धूलि में खेलकर भी निर्लेप-स्वच्छ रहेगा, और सब
बन्धनों में बंध कर भी मुक्त-समान रहेगा।

इसलिये तब तक, तू अन्तःकरण के अन्तःपुर में ही निवास
कर !

सत्यार्पण : १३७

[आमार चित्त तोमार नित्य हबे सत्य हबे]

तेरा होकर ही मेरा चित्र सत्य होता है, स्थिर होता है।
हे सत्यस्वरूप! वह मंगल दिन कब आयगा जब मैं सम्पूर्ण
तेरा हो जाऊँगा?
सत्य, सत्य—यही जपते हुए मैं अपनी बुद्धि सत्य के
अर्पण कर जगत की सीमाओं को लांघ, कब सत्य का
प्रकाश—तेरा प्रकाश—पाऊँगा,

तुझसे दूर रहकर मैं अपने ही असत्य में बंध जाता हूँ।

अपना अहंभाव छोड़कर जब मैं तुझ में विलीन हो जाऊँगा,
तभी तेरे समान सत्य होऊँगा, तभी मेरी रक्षा होगी!
यह वरदान मुझे तुझसे कब मिलेगा?

अल्प भिक्षा : १३८

[तोमाय अमार प्रभु कोरे राखि]

प्रभु ! मैं तुझसे इतनी ही भिक्षा माँगता हूँ—
तू मुझमें बस इतना ही अहंभाव शेष रहने दे कि मैं तुझमें
पूर्णभाव से एकरूप हो सकूँ !
मुझमें बस इतनी ही स्वतन्त्र चेतना रहने दे कि मैं तुझे चारों
ओर अनुभव कर सकूँ; और रात-दिन, प्रत्येक क्षण
अपना प्रेम तेरे अर्पण कर सकूँ !
मुझमें बस इतना ही सा आवरण रहने दे कि मेरा 'अहं'
तुझे न ढांप सके; तेरी लीला ही मेरे सम्पूर्ण जीवन
में संचारित हो !
प्रभु ! मुझे इतने ही बंधन में बांधना कि मैं तेरे ही प्रेम-पाश
में बंधा रहूँ, मेरे जीवन में तेरा ही प्रयोजन सिद्ध
होता रहे !

प्रभु ! मैं तुझसे इतनी ही भिक्षा चाहता हूँ !

प्राणों की झोली : १३६

[आ विर्येछो आमार ए प्राण भरि]

तूने मेरे प्राणों की झोली इतनी-सी अवश्य भरदी है कि अब
अभी मृत्यु हो जाय तो भी मुझे खेद न हो !

रात-दिन कितने ही सुख-दुःख, कितने ही हृदयाकाश के उमड़ते
स्वरों, कितने ही वेशों और रूपों में तूने मेरे मन में
आकर हृदय का हरण कर लिया है।
अब, अभी मृत्यु हो जाय तो भी मुझे खेद न हो !

मुझे मालूम है मैं तुझे पूरी तरह अपना नहीं सका, इसीलिये
मुझे तेरी पूर्णता का वरदान नहीं मिल सका, फिर
भी जो कुछ मुझे मिला है वह बड़े भाग्य से मिला है !
तूने मुझे अपना स्पर्श दिया है, अपना आभास दिया है, 'तू
है'—यह अनुभूति दी है, इस श्रद्धा की नाव पर ही
मेरी जीवन-यात्रा चल रही है !
अब अभी मृत्यु हो जाय तो भी मुझे खेद न हो !

[ओ रे माझि, ओ रे आमार]

हे नाविक, हे मेरी जीवन-नौका के नाविक !
उस पार किनारे पर बहुत, बहुत दूर से जो बांसुरी की तान
आ रही है, वह तुझे सुनाई दे रही है क्या ?
दिन ढलने पर तेरी नौका उस घाट पर पहुँच कर वहाँ ठह-
रेगी क्या ?
वहाँ सन्ध्याकाल के अंधकार में तुझे दीपमाला के झिलमिलाते
दीपक दिखाई दे रहे हैं क्या ?

मुझे प्रतीत होता है कि आज सिंधु के उस पार की मंद-मधुर
हवा में, गहन अंधकार में, किसी का हास्य मिला
हुआ है ?

जाते-जाते राह में मैंने कुछ कलियाँ तोड़ी हैं,
उनमें जो खिली रहेंगी, आज वही उनके अर्पण करूँगा !

काली छाया : १४१

[मन के आभार काया के]

अपने मन की, अपने देह की काली छाया को मिटादूँ—
यह कामना मेरे मन में बहुत तीव्र हो उठी है।
जी चाहता है, उस छाया को आग में झोंक दूँ, समुद्र में
डुबोदूँ या तेरे चरणों में द्रवित कर बहादूँ!
जहाँ भी जाता हूँ, 'अहं' की यह छाया मेरे साथ जाती है;
जहाँ बैठूँ, यह पहले ही आसन जमा लेती है।
शर्म से मेरा मन ज़मीन में गड़ा जाता है।
जब इस छाया को दूर कर दूँगा, तभी तेरा परिपूर्ण दर्शन
मिलेगा!

विदाई के दिन : १४२

[जाबार दिने एइ कथाटि]

जाने के दिन मैं यही बात कहता जाऊँ कि जो कुछ मैंने
देखा, पाया, उसकी उपमा नहीं थी !

इस प्रकाशमय सरोवर के कमल का मधुर-मधु मैंने चखा है;
मैं उसे पीकर धन्य हुआ हूँ !

विश्व के क्रीड़ागृह में मैं अनेक खेल खेला हूँ, दोनों नेत्रों से
मैंने अमित-सौन्दर्य-मधु का पान किया है !

जिसका स्पर्श भी असंभव है, उसने मेरे शरीर की नस-नस
में समाकर मेरे प्राणों को पुलकित किया है ।
मैं उसे पाकर धन्य हुआ हूँ !

इसलिए जाने के दिन मैं यही घोषित करूँ कि जो कुछ मैंने
देखा व पाया है वह अतुल्य है, अनुपमेय है !

यही शब्द मेरे विदाई के शब्द हों !

नाम का बन्दीगृह : १४३

[आमार नामटा दिये ढेके राखि जारे]

अपने नाम के साथ जिसे मैंने बांधा है, वह इस नाम की
कड़ियों में बंधा बंदीगृह में रो रहा है!

रात-दिन नाम की दीवार को ही बांधते हुए मैं शेष सब काम
भूल गया हूँ।
नाम की यह दीवार जैसे-जैसे आकाश में ऊँची बंधती जाती
है, वैसे-वैसे इस दीवार की छाया का घना अन्धकार मेरे
अंतःकरण को घेरता जा रहा है।
मिट्टी पर मिट्टी रखते हुए मैं नाम की दीवार को ऊँची करता
जा रहा हूँ;

उस दीवार में कोई छिद्र न रह जाय, प्रकाश आने का कोई
मार्ग न रह जाय, इसी की मुझे चिन्ता है।

इस दीवार ने तो सत्यस्वरूप को ही छिपा लिया है!

नाम-रहित परिचय : १४४

[नामटा जे दिना घुचाबे नाथ]

नाथ ! जिस दिन यह नाम का गर्व नष्ट होगा उसी दिन मुझे
अपने बनाये स्वप्न-संसार से मुक्ति मिलेगी और उसी
दिन तुझ में नया जन्म लूँगा !

मेरे हाथ पर तूने जिस भाग्य-रेखा का अंकन किया है उसे
मिटाकर मैं अपनी ही रेखायें बनाने में व्यस्त हूँ ! कब
तक यह भीषण व्यापार चलता रहेगा ? कब तक मैं
उन्हें मिटाता रहूँगा ?

तेरे सुन्दर अलंकारों को उतार कर मैं अपने खोटे आभूषणों
से सजने का यत्न कर रहा हूँ। सब स्वरों को बन्द कर
मैं अपने ही कण्ठ-स्वरों को आकाश में ऊँचा उठा
रहा हूँ।

जिस दिन मैं अपनी नाव को छोड़ तेरी नाव का आनन्द से
वाहन कर सकूँगा, उसी दिन मैं सबके बीच निःसंकोच
मिल सकूँगा और बिना नाम के ही सबसे परिचय पा
सकूँगा !

यह नाम रहित परिचय ही सच्चा परिचय होगा !

मोहशृङ्खला : १४५

[जडाये आछे बाधा]

मेरी मोह की जंजीर बड़ी दृढ़ है !

तू उसे तोड़ दे, यही मेरी कामना है; किन्तु उसे तोड़ते हुए मेरा मन दुःखी हो जाता है।

मुक्ति मांगने के लिये मैं तेरे पास जाता हूँ किन्तु मुक्ति की आशा से भयभीत हो जाता हूँ !

मेरे जीवन में तू ही मेरी सर्वश्रेष्ठ निधि है। तुझ-सा अनमोल धन कोई दूसरा नहीं;

यह मैं जानता हूँ, किन्तु मेरे घर में जो टूटे-फूटे बरतन हैं उन्हें भी फैंकने को दिल नहीं मानता।

जो आवरण मेरे शरीर पर पड़ा है, हृदय पर पड़ा है वह धूलि-धूसर है और मृत्यु के शाप से ग्रस्त है; मेरा मन उसे धिक्कारता है, तो भी उससे मुझे लगाव है।

मेरे ऋणों का अंत नहीं, मेरे खाते में अनेक जनों की रकमें जमा हैं, मेरे जीवन की विफलतायें बड़ी है, मेरी लज्जा की सीमा नहीं;

फिर भी जब कल्याण की भिक्षा मांगने तेरे सामने आता हूँ तो मन ही मन इस डर से कांपता हूँ कहीं मेरी भिक्षा स्वीकार न हो जाय, कहीं मेरे शरीर व हृदय के मैले आच्छादन को तू उतार न ले, मेरी बंधन शृंखला को तू तोड़ न दे !

सीप का मोती : १४६

[तोमार दया जदि चाहिते नाओ जानि]

'मैं तेरी दया का याचक हूँ,' इतना भी न जानूँ, तो भी नाथ!
अपने चरणों के पास रख मुझे दया से ढक देना।

मैं जब निर्माण करता हूँ तो तूझे भूल बैठता हूँ। उस निर्माण
के फल-फूल में ही मग्न हो जाता हूँ और उससे प्राप्त
सुख की आराधना में ही डूब जाता हूँ।
इस स्वनिर्मित मिट्टी के क्रीड़ागृह में ही खेलता जान मुझसे
विमुख न हो जाना, मुझे तुच्छ समझ भूल न जाना;
बल्कि, अपनी तीव्र प्रेरणा से मुझे जगा देना!

इस द्वन्द के बीच ही सत्य है जैसे सीप की दो तहों में मोती
रहता है। तेरे सिवा कौन है जो उसे भेदकर सत्य को
प्रस्फुटित कर सके?
मृत्यु का भेदन करके ही अमृत की प्राप्ति होती है!

मेरे दैन्य की अगाध शून्यता को भरने आ!
पतन की वेदना ही चेतनता को जाग्रत करती।
द्वन्द्वों के इस परस्पर-विरोधी कोलाहल में तेरी गंभीर वाणी
मुझे स्पष्ट सुनाई दे रही है!

अधूरी पूजा : १४७

[जीवने जतो पूजा होलो ना सारा]

इस जीवन में जो पूजा करनी थी वह पूरी नहीं हुई;
किन्तु वह अधूरी अर्चना भी विफल नहीं होगी, यह मैं जानता हूँ !

कोई कली खिलने से पहले ही यदि पृथ्वी पर गिर पड़ी, या कोई जलधारा मरुस्थल में लीन होगई, तो भी वह विफल नहीं हुई, यह मैं जानता हूँ !

जीवन में जो कुछ पीछे छूट गया, शेष रह गया, वह भी व्यर्थ नहीं गया, यह मैं जानता हूँ !

मेरा अनागत, अनाहत, सब तेरी वीणा की तारों पर ध्वनित हो रहा है;
वह शून्य में नहीं मिला—यह मैं जानता हूँ !

एक ही नमस्कार : १४८

[एकटि नमस्कारे प्रभू]

हे प्रभु ! ऐसा वर दे कि एक ही प्रणाम में मेरा सारा देह तेरे
विशाल चरणों को स्पर्श करले !

अनभरे जल-भार से झुकी सावन की मेघमाला के समान
मेरा मन एक ही प्रणाम द्वारा तेरे मन्दिर-द्वार पर
समर्पित हो जाय !

मेरे सब गीत अपने विविध स्वरों के तरल अलाप को एक ही
प्रवाह में एकत्र करलें;

और एक ही प्रणाम में तेरे नीरव सागर में विलीन हो जांय !
मानसरोवर की ओर जाने वाले हंस जिस तरह दिन रात
एक ही उड़ान में उड़ते जाते हैं, उसी तरह महामृत्यु
के पथ पर मेरे प्राण एक ही नमस्कार में उड़ चलें !

कुमारिका : १४९

[जीबने आ चिरदिन]

प्रियतम ! अपने जीवन के अन्तिम गीत में, मैं तेरे चरणों में
उसे अपनी अंतिम भेंट के रुप में अर्पित करूँगा—

जो मेरे जीवन में सतत आभास-रूप रही है,
जिसने प्रभात के प्रकाश में भी अपना घूंघट नहीं खोला,
शब्दों ने जिसे कभी पूरी तरह अपने आलिगन में नहीं लपेटा,
गीतों ने जिसे कभी अपने स्वरों से पूरी तरह नहीं बांधा,

जिसका मोहक सौन्दर्य नये-नये रूप धारण करता है—
प्रियतम ! उसे अपने जीवन की अंतिम भेंट के रूप में अर्पित
करूँगा !

देश-देशान्तर भ्रमण करते हुए मैंने उसे अपने अन्तराल में
छिपाकर रखा है;

मेरे जीवन की समस्त गतिविधि उसी केन्द्र की परिक्रमा करती
रही है;

मेरे सम्पूर्ण विचारों, कार्यों, मेरे स्वप्नों में वही राज्य करती
रही है; फिर भी वह एकाकी अछूती रही है !

दिवसानुदिवस कितने ही लोग उसके लिये द्वार तक आये,
किन्तु सभी बाहर के द्वार से ही निराश वापिस लौट
गये !

किसी भी अन्य जन के सामने वह निरावृत नहीं हुई, किसी से उसका परिचय नहीं हुआ।

केवल तेरे परिचय पाने की आशा से वह मेरे हृदय के अन्तराल में बैठी है!

प्रियतम! उसे अपने जीवन के अन्तिम गीत में अन्तिम भेंट के रूप में तुझे अर्पित करूँगा!

नित्य विरोध : १५०

[तोमार साथे नित्य बरोध]

तेरे साथ नित्य का विरोध अब सहा नहीं जाता !
दिन पर दिन मेरे ऋण का भार बढ़ता ही जाता है !

सब लोग सुन्दर वेष-भूषा में सजकर तेरी सभा में आ, तुझे प्रणाम कर चले गये।

मैं मलिन वस्त्रों में लिपटा बाहर ही छिपा रहा। मेरा मान मिट्टी में मिल गया। मन की इस वेदना को तुझसे कैसे कहूं ? तुझसे मन की बात कहने का साहस नहीं होता।

इस अपमान के बाद अब यही प्रार्थना है कि मुझे अपने चरणों में बिके-गुलाम की तरह पड़ा रहने दे; तेरे पास आकर मैं कभी लौटूँ नहीं !

प्रेम का दास : १५१

[प्रेमेर हाते धरा देबो]

प्रेम के हाथों में अर्पित होने को बैठा हूँ !
इसीलिये बहुत विलंब होगया है, और मुझसे अनेक अपराध होगये हैं !

वे अपने विधि-विधानों की डोर में मुझे बाँधने आते हैं,
लेकिन मैं सदा बच निकलता हूँ ।
इस अपराध की सज़ा भुगतनी होगी तो मैं ख़ुशी से भोगूँगा,
कारण, मैं प्रेम के हाथों बिककर यहाँ बैठा हूँ ।
लोग मेरी निन्दा करते है, मैं निन्दा के भार को शिरोधार्य करके सबके आगे नतमस्तक हो जाता हूँ ।

दिन ढल गया;
बेच-खरीद के व्यापारी चले गये ।
मुझे बुलाने को आये लोग भी निराश होकर लौट गये ।
किन्तु, मैं केवल प्रेम के हाथ बिकने को यहाँ अकेला बैठा हूँ !

निराला प्रेम : १५२

[संसारे ते आर जाहारा]

इस जग की यह रीति है कि जो मुझसे प्रेम करता है वह प्रेम के पाश में बांध देता है मुझे !
किन्तु तेरा सबसे अधिक प्रेम सबसे निराला है, उसकी नई ही रीति है;

तू प्रेम के पाश में मुझे नहीं जकड़ता, सर्वथा मुक्त रखता है !
इतर प्रेमी, इस भय से कि कहीं मैं उन्हें भूल न जाऊँ, मेरा संग नहीं छोड़ते ।

किन्तु एक तू है, जो दिन पर दिन बीत जाते हैं, अपने दर्शन भी नहीं देता !

तेरा प्रेम सबसे निराला है !
मैं तुझे प्रार्थना में पुकारूँ या न पुकारूँ, तुझे याद करूँ या न करूँ—
तेरा प्रेम मेरे प्रेम की सदा प्रतीक्षा करता रहता है !

मृत्यु (प्रेम) दूत : १५३

[प्रेमेर दूत के पठाबे नाथ कबे]

प्रेम के दूत को कब भेजोगे, नाथ !
उनके आने पर मेरे सब द्वन्द मिट जायंगे।

मेरे घर के अन्य आगंतुक मुझ पर भय से शासन करते हैं, वे मेरे मन के वातायन—आत्मा के द्वार बंद कर देते हैं, और पराभव न मानने पर इस बंधन को और कस देते हैं।

प्रेम के दूतों के आने पर सब अवरोध दूर हो जायंगे, सब श्रृंखलायें स्वयं शिथिल हो जायंगी। उनके आने के बाद कौन मुझे घर की दीवार में बन्दी कर सकेगा ?

वे आते हैं, तो अकेले चलकर आते हैं, उनके गले में पुष्प-माला डोलती है। उस माला से जब तू मुझे बांधेगा मेरा हृदय स्वतः निःशब्द हो जायगा !

जीवन-वंशी : १५४

[गान गावाले आमाय तुमि]

अनेक बहानों से, कभी खेल-खेल में और कभी अश्रुपात से, तू मुझसे गीत गवाता है।

हाथों से स्पर्श करने जाऊँ तो तू पकड़ में नहीं आता, समीप जाऊँ तो तुरन्त दूर हो जाता है, इस तरह कितने ही खेल-खेल में तू मुझसे गाने गवाता है।

तूने अपनी वीणा पर कितने तीव्र-स्वर बजाये हैं, मेरे जीवन में सैकड़ों छिद्र करके तू बांसुरी बजा रहा हैं;
तेरे स्वरों के जाल में बंधकर मेरी आत्मा कंठ द्वार तक आगई है, अब इसे अपने चरणों में पड़ा रहने दे!

मेरे दीर्घ जीवन में तू असंख्य बहानों से मुझसे गीत गवाता है।

विराम कहाँ ?   :   १५५

[मने करि एइखाने शेष]

मन में सोचा था कि यहीं अब पूर्ण विराम कर दूँगा !
किन्तु विराम कहाँ हुआ ? तेरी सभा में फिर लौट आया ।

अब नये गीतों, नये रागों के लिये मेरा प्रफुल्लित हृदय उत्सुक होगया है !
स्वरों के विराम पर मेरी क्या दशा होती हैं, इसका मुझे ज्ञान ही नहीं रहता ।

संध्या की वेला में स्वर्ण-किरणों से अपनी तान मिलाकर जब मैं अपने गीतों को पूर्ण करता हूँ तो मध्यरात्रि के गम्भीर स्वर मेरे जीवन में फिर से भरने के लिये जाग उठते हैं !
तब मेरी आँखों में तिलभर नींद नहीं रहती, मेरे गीतों को विराम नहीं मिलता !

शेष में अशेष : १५६

[शेषेर मध्ये अशेष आछे]

पूर्णता में अपूर्णता है—यह सत्य आज के अन्तिम गायन के
बाद बार-बार मेरे मन में आ रहा है।

स्वरों का विराम हो गया, फिर भी उन्हें विराम की इच्छा नहीं;
निःस्तब्धता में भी वीणा के तार स्वयं बज उठते हैं!

उन पर जब आधार होता है, स्वरों का निर्माण होता है, तब
भी सबसे महान गीत उन स्वरों में नहीं बंधता!

दिवसान्त पर जैसे संध्या का गम्भीर स्वर आकाश में गूँजता
रहता है; उसी तरह मेरे सारे आलापों के अन्त में
वह गीत प्रशान्त मौन वीणा की तारों में स्वतः अवत-
रित हो जाता है!

दिवसान्त : १५७

[दिवस जदि सांग होलो]

यदि दिन ढल गया, और पक्षियों का गीत समाप्त होगया है—
थकी-हारी हवा यदि बहते-बहते अलसा गई है—
तो, मुझे भी काली घटाओं की चादर से ढक दे !
उसी तरह, जिस तरह तूने पृथ्वी को निद्रा की ओढ़नी से ढका है, अथवा जिस तरह तूने दिवसावसान पर मुरझाते कमलों की पंखड़ियों को कोमलता से बन्द किया है !

जिसकी पथ-सामग्री मंजिल पर पहुँचने से पूर्व ही समाप्त होगई है;
और जिसके मुख पर चिंताओं की रेखायें अंकित होगई है।
जिसकी वेष-भूषा फटी हुई और धूल में लथ-पथ है,
जिसकी शक्ति का स्रोत सूख गया है।
उसे, दिन ढलने पर काली घटाओं की चादर से ढक दे !

पुनर्जन्म : १५८

न जाने, कब मैंने जीवन की दहलीज़ को पहले-पहल लांघा था ?
कौन-सी शक्ति थी जिसने मुझे इस विशाल रहस्यमय देश में फूट पड़ने की प्रेरणा दी थी ?—जैसे आधी रात को जंगल में फूल की कलिका फूट पड़े !

प्रातःकाल मैंने जब प्रकाश की किरणें देखीं तो क्षण भर में यह जान गया कि उस रहस्य-प्रदेश में मैं निरा अजनबी नहीं था, और यह भी कि एक अज्ञात, निराकार शक्ति ने मुझे माता की तरह अपनी गोद में ले लिया था।
मृत्युकाल में भी, वही अज्ञात किन्तु युग-युगों से परिचिता माता मुझे गोद में लेने आजायगी।
जीवन से मुझे प्रेम है, मृत्यु से भी प्रेम होगा !

माता के दक्षिणपार्श्व के स्तन से वियुक्त हो बच्चा रो उठता है; किन्तु दूसरे ही क्षण वामपार्श्व पाकर चुप हो जाता है। जीवन से छूटकर मृत्यु पाना भी इसी क्षणिक वियोग और प्राप्ति के समान है।

आज अपनी पराजय की मालाओं और स्मृति-चिन्हों से तुझे
अलंकृत करूँगा। अपराजित होकर बच निकलना मेरी
सामर्थ्य से बाहर है!
मेरा गर्व चूर हो जायगा, अतिशय वेदना से मेरे जीवन के
अवरुद्ध कोष फूट पड़ेंगे, मेरा रिक्त हृदय गीतों के बिखरे
स्वरों में सुबकने लगेगा और पत्थर भी आँसुओं में
पिघल उठेगा, यह मैं जानता हूँ!
यह भी जानता हूँ कि कमल की सहस्रों पंखड़ियाँ सदा
बन्द नहीं रहेंगी और इसका मधुकोष सदा भरा ही
नहीं रहेगा।

नीले आकाश से दो नेत्र मेरी ओर निर्निमेष देखेंगे और मुझे
चुपचाप बुला लेंगे। मेरे लिये कुछ भी शेष नहीं रहेगा—
कुछ भी नहीं! तेरे चरणों में भी मुझे मृत्यु का ही
वरदान मिलेगा!

आज तुझे पराजय के आभूषणों से सज्जित करूँगा, अपराजित
होकर बच निकलना मेरी शक्ति से बाहर है।

जिस दिन कमल की कलियों ने घूंघट खोला, कमल-पुष्प पूरी
तरह खिल गया !
हाय ! मेरा मन उस दिन न जाने कहाँ बेसुध भटक रहा था,
मुझे कमल खिलने की खबर ही नहीं लगी ।
मेरी डाली फूलों से खाली थी और उस खिले फूल पर
मेरी निगाह ही नही पड़ी ।

कभी-कभी, बार-बार एक विलक्षण-सा विषाद मेरे तन-मन
को व्याप्त कर लेता था ।
स्वप्न से जागकर मुझे दक्षिण से आते पवन में एक मधुर
सौरभ का आभास हुआ । उसकी रहस्य-भरी गन्ध ने मेरे
हृदय में लालसा की विलक्षण वेदना भरदी; मानो वसन्त
ने पूर्ण मिलन की उत्कण्ठा में गहरा उच्छ्वास
लिया हो ।
ओह ! वह इतना निकट था, नहीं-नहीं, वह तो मेरा ही
उच्छ्वास था—इसका ज्ञान मुझे तब नहीं हुआ । मैंने
तब यह बात नहीं जानी कि यह पूर्ण माधुर्य-भरी पुष्प-
कलिका मेरे ही गहन अंतराल में फूटी थी !

प्रस्थान : १६१

मुझे अब अपनी नाव का लंगर ज़रूर उठाना होगा और
प्रस्थान करना होगा !
हाय ! तट पर खड़े-खड़े ही दिन की अलसाई घड़ियाँ बीतती
जा रही हैं ।

वसन्त के फूल खिलकर बिदा होगये ।
मैं मुरझाये फूलों को ही चुनता यहाँ किसकी प्रतीक्षा में खड़ा हूँ ?

लहरों में शोर मचा है और तट की अंधेरी कुंज-गलियों में
पीले पत्ते फड़फड़ाकर गिरने शुरू होगये हैं ।

तू किस शून्य पर आँख गड़ाये खड़ा है ! मुझे क्या इस बहते
पवन के कण-कण में मिश्रित उल्लास की अनुभूति
नहीं होती, जिसमें उस पार के गीतों का स्वर मिला
हुआ है !

थकी पलकें : १६२

इस थकान-भरी रात में, मुझे सब कुछ तेरे चरणों पर रख
निश्चिन्तता और पूर्ण आश्वासन के साथ अपने पास
सोने दे!

मेरी क्लान्त और शिथिल शक्तियों को अपनी पूजा के अर्घ्य-
संचय में न लगाना – मेरा थका-हारा मन पूजा की
उचित तैयारी नहीं कर सकेगा।

तू ही तो दिवस की थकी पलकों को रात की चादर से ढक
देता है—जिससे वह जागरण के नये आनन्द से पुलकित
हो, नई ज्योति लेकर अपनी यात्रा में नये उत्साह से
प्रस्थान करे!

स्वतः बन्दी : १६३

"बन्दी ! बता, वह कौन था जिसने तुझे बन्दी बना दिया !"
बन्दी ने उत्तर दिया, "मेरे प्रभु ने—मैंने कल्पना की थी कि मैं धन और बल में सब से आगे बढ़ जाऊँगा। अपनी ही तिजोरी में मैंने अपने प्रभु के हिस्से का धन भी रख लिया। जब नींद आई तो प्रभु की ही शैय्या पर सो भी गया। जब जागा तो देखा कि मैं अपनी ही तिजोरी में बंद हो गया था !"

"बंदी ! बता वह कौन है जिसने इस जंजीर को अटूट बना दिया?"

बंदी ने उत्तर दिया, "स्वयं मैंने ही इस जंजीर की कड़ियाँ बड़े यत्न से घड़ीं थीं ! मैंने स्वप्न लिये थे कि अपनी अजेय शक्तियों से मैं संसार की सब शक्तियों को इस जंजीर में जकड़ लूंगा और स्वयं स्वाधीन रहकर संसार को अपना दास बना लूँगा। इसीलिये रात-दिन की कठोर मेहनत से, दहकती आग और भारी हथौड़ों के निष्ठुर प्रहारों से, मैंने यह जंजीर तैयार की। लेकिन, जब जंजीर की कड़ियाँ जुड़कर अखण्डित होगईं तो मैंने देखा कि मैं स्वयं ही इन अखण्ड लोह-कड़ियों का बन्दी बन गया था !"
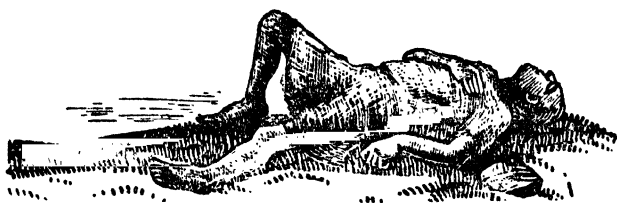
तेरे मन पर थकान का परदा पड़ा है और तेरी पलकें नींद के भार से बन्द हो रही हैं।

क्या तूने नहीं सुना, फूल बड़े गर्व से कांटों पर राज्य कर रहा है।

जाग, हे जाग्रत मानव! समय को व्यर्थ ही न जाने दे।
तेरे पथरीले मार्ग के अन्त में, उस अछूने एकांत प्रदेश में, तेरा साथी अकेला बैठा है; उसे धोखा न दे। जाग, हे जाग्रत मानव!

आकाश मध्यान्ह की गरमी से हांफ रहा है—उसकी चिन्ता न कर। दहकती हुई रेत प्यास की व्याकुलता को बखेर रही है—उसकी चिन्ता न कर!

तेरे हृदय के अंतराल में क्या कोई उल्लास नहीं रहा? तेरे हर पदाघात पर क्या वीणा के तार, करुण गीतों में नहीं फूट पड़ेंगे?

बाल-मेला : १६५

असंख्य लोकों के समुद्र-तट पर बालकों का मेला है !
ऊपर अनन्त आकाश का मौन है, और नीचे सागर की क्षुब्ध तरंगें हैं।
असंख्य लोकों के समुद्र-तट पर बालक कोलाहल और नृत्य करने आते हैं।
व बालू के घरौंदे बनाते हैं, खाली कौड़ियों से खेलते हैं। वे सूखे पत्तों की नाव बनाकर सागर के अथाह जल में बहा देते हैं।

असंख्य लोकों के सागर-तट पर बालकों का मेला लगा है !
उन्हें तैरना नहीं आता, जाल बिछाना नहीं आता।
मोतियों के मांझी मोतियों के लिये गोता लगाते हैं; सोने-चांदी के सौदागर अपने जहाज़ों पर धन बटोरने जाते हैं, किंतु, बालक सागर के तट पर कौड़ियाँ जमा करते हैं और बखेर देते हैं। न उन्हें छिपे खज़ानों की चाह है, न ही उन्हें धन बटोरने के लिये जाल बिछाना आता है।

सागर की तरंगें अट्टहास करती हुई उछलती हैं और सागर-तट पर फेनिल मुस्कान की रेखा खिंच जाती है। मृत्यु-दूती-लहरें बच्चों को अर्थहीन संगीत सुनाती हैं—जैसे मां पालने में लेटे अपने शिशु के लिये लोरियाँ गाती है !

असंख्य लोकों के तट पर बालकों का मेला लगा है !
पथहीन आकाश में तूफ़ान आते हैं, पथहीन सागर की
तरंगों में जहाज़ टकराते हैं। मौत आज़ाद होकर घूम
रही है लेकिन बच्चे किनारे पर खेल रहे हैं !

असंख्य लोकों के समुद्र-तट पर बालकों का मेला लगा है !

अरुणाई : १६६

नींद में सोये बालक की पलकों पर प्रथम किरण कहाँ से उतरी ? कोई जानता है ?

हाँ, सुनते हैं कि कुछ दूर एक परियों का गांव है जो जुगनुओं के धीमे २ प्रकाश से प्रकाशित जंगल की घनी छाया में बसा हुआ है। वहाँ दो कलियाँ खिली हुई हैं। वहीं से वे बालकों की पलकों को चूमने के लिये उतरती हैं ?

बालक के अधरों पर खेलती मुसकान कहाँ से आई ? कोई जानता है ?

हाँ, सुनते हैं, दूज के चांद की तरुण, अछूती, किरण ने एक बार वासंती मेघ के कोर का स्पर्श किया था। पहले-पहल वहीं ओस से भीगी उषा के स्वप्नों में मुसकान का जन्म हुआ था। वही मुसकान बालक के अधरों पर खेलती है !

बालक के देह पर मधुर, स्निग्ध अरुणाई कहाँ से उतरी ? कोई जानता है ?

हाँ, जब उसकी माता केवल तरुण बाला थी तभी इसी अरुणाई ने उसके हृदय को, मौन प्रेम के स्निग्ध मधुर रहस्य से आवृत कर लिया था—यही स्निग्ध माधुर्य बालक के देह पर अवतरित हुआ है !

समाधान : १६७

मेरे बच्चे !
जब मैं तेरे लिये रंगीन खिलौने लाता हूँ—
मेरा समाधान हो जाता है, क्यों बादलों में और पानी पर रंगों की होली होती है और किसलिये फूलों की पंखड़ियाँ रंगीन हैं ?

जब मैं तुझे नृत्य कराने के लिये गीत गाता हूँ।
मुझे समझ आ जाता है, क्यों वृक्ष के पत्तों में गीत का स्वर है और किसलिये सागर की तरंगें अपना गीत श्रवणोत्सुक पृथ्वी के हृदय को निरन्तर सुनाती हैं।

जब मैं तेरे लोभी हाथों में मीठे पकवान रखता हूँ;
मुझे समझ आ जाता है, क्यों फूलों की सुराही में मधुर-सुधा रखी है और किसलिये फूलों में मीठे रस भरे हैं।

जब मैं तुझे हंसाने को तेरा चुम्बन करता हूँ।
मैं समझ जाता हूँ, कि प्रभात में आकाश से फूटती आनन्द-धाराओं का रहस्य क्या है और वसन्त की हवा जब मेरे शरीर का स्पर्श करती है तो मुझे रोमांच क्यों हो जाता है।

आँचल का दीप : १६८

उस एकांत नदी के ढलवान रास्ते पर जहाँ लम्बी-लम्बी घास
उगी हुई थी, मैंने उससे कहा—"सुन्दरि ! तू अपने
आँचल से इस दीपक को ढके कहाँ जा रही है ? यह
दीपक मुझे दे दे—मेरी कुटिया में गहरा अंधेरा छाया है।"

उसने अपनी कजरारी आँखों को क्षण-भर के लिये मेरे
चेहरे पर गड़ाते हुए कहा—"मैं आई हूँ दिन ढलने
पर अपना दीपक नदी की धारा में बहाने के लिये !"

मैं आश्चर्य से देखता रहा, उसका टिमटिमाता दीपक नदी की
लहरों पर निष्प्रयोजन बहा जा रहा था !

रात का अंधेरा जब गहन होता जा रहा था, मैंने उससे पूछा—
"सुन्दरि ! तेरा घर प्रकाश से जगमगा रहा है। अब
तू यह दीपक लेकर कहाँ चली ? यह दीपक मुझे दे दे;
मेरी कुटिया में गहरा अंधेरा है।"

उसने अपने कजरारे नेत्रों से मेरे चेहरे पर सन्देह-भरी नज़र
डालते हुए कहा—"मैं यह दीपक शून्य प्रकाश को
अर्पित करने आई हूँ।"

मैं आश्चर्य से देखता रहा; उसकी दीप-शिखा आकाश की
शून्यता में निरुद्देश्य जलती जा रही थी !

चन्द्रहीन काली अमावस रात में मैंने उससे पूछा—"सुन्दरि !

इस जलते दीपक को अपने हृदय के समीप रख किसकी
खोज में चली हो ?

वह एक क्षण के लिये ठिठक गई, फिर कुछ सोच मेरी ओर
दृष्टिपात करके बोली—"मैं अपना यह दीपक विश्व की
दीप-माला के उत्सव में सम्मिलित करने के लिये लाई हूँ।"
मैं आश्चर्य से देखता रहा; उसका छोटा-सा दीप सहस्रों दीपों
के प्रकाश में बिना प्रयोजन लीन होता जा रहा था !

तू ही मुक्त प्रकाश है और तू ही आकाश-स्थित घोंसला
भी है !

हे सुन्दर ! यह तेरा प्रेम ही है जो इस घोंसले में प्रसुप्त
आत्मा को अपने रूप, गन्ध और स्पर्श से आवृत
करता है।

मौन उषा अपने हाथ में सुन्दर पुष्प-माला से सजी सुनहरी
डाली लेकर पृथ्वी का अभिषेक करने आती है !

और यह सन्ध्या, निर्जन नीरव-घाटियों पर अछूते राह से
चलती, अनंत प्रशान्ति के पश्चिमी सागरों से अपने
स्वर्ण-कुम्भ में शान्ति का शीतल अमृत भरकर ला
रही है !

किन्तु जहाँ आत्मा के मुक्त विहान के लिये अनंत आकाश
फैला हुआ है, वहाँ निष्कलंक श्वेत ज्योत्स्ना का ही
विस्तार है वहाँ ना रात्रि है, ना दिवस; ना आकार
है ना रँग; और इतना नीरव है वह कि शब्द की तो
वहाँ कभी किसी काल में भी पहुँच नहीं हो सकती !

रहस्यमय : १७०

यह वही है जो मेरे अंतरतम में बैठ अपने गूढ़ रहस्यमय स्पर्श
से मेरी आत्मा को जगाता है।

यह वही है जो इन आँखों में अपना जादू भरता है और
आनन्द से मेरे हृदय की तारों पर सुख-दुःख के तराने
गाता है।

यह वही है जो सोने-चाँदी की तारों में माया का ताना-बाना
बुनता है और अपने चरण इस लोक में रखता है—
जिसके स्पर्श से आनन्द-विभोर हो मैं आत्म-विस्मृत
होता हूँ।

दिन पर दिन आते हैं, युग पर युग बीतते हैं, पर यह वही
है जो मेरे हृदय को विविध नामों, विविध रूपों और
सुख-दुःख की विविध तरंगों से आप्लावित करता है।

जीवन-धारा : १७१

जो जीवन-धारा दिन-रात मेरी नसों में प्रवाहित हो रही है,
वही विश्व में उसी गति व लय-तान के साथ चल
रही है !

यही जीवन-धारा है जो सानन्द पृथ्वी की धूल से फूटकर
हरे घास की कोंपलों के रूप में प्रकट होती है और यह
वही है जो असंख्य नव-पल्लवों और फूलों के रूप में
प्रस्फुटित होती है।

यही वह जीवन है जो समुद्र की तरंगों के पालने में जीवन
और मृत्यु, आरोह और अवरोह बनकर स्थित है।

इस जीवन के स्पर्श से ही मेरे तन-मन में रोमांच होता है;
और, युगों के नृत्य में जो जीवन का कंपन छिपा है उससे
मेरा रक्त कम्पित हो रहा है—यही प्रतीति मेरे अंतर में
अभिमान भर देती है !

चरम लक्ष्य : १७२

तेरे उपहार हमारे पास आकर भी तेरे पास लौट जाते हैं; वे
हमारी पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करके संपूर्ण रूप में
वापिस चले जाते हैं।

नदी की अजस्र जल-धारा हमारे खेतों को सींचने के बाद तेरे
चरण धोने को वापिस चली जाती है।

फूल अपनी सुगंध में पवन को सुवासित करते हैं किन्तु इनका
भी अंतिम लक्ष्य तुझ पर अर्पित होना ही है।

तेरी पूजा संसार को दीन नहीं बनाती, तेरी भिक्षा भिखारी
को कंगाल नहीं बनाती।

कवि के गीतों में सब जन अपनी मनोवांछित भावनाओं का
प्रतीक देखते हैं;

किन्तु उनका चरम-लक्ष्य केवल तेरा ही संकेत करता है,
तेरा ही संकेत करता है।

बन्धन-मुक्ति : १७२

वैराग्य-साधन में ही मेरी मुक्ति नहीं है।
अनुराग के हज़ारों बन्धनों में ही मुझे मुक्ति का आनन्द अनुभव होता है!

मैं अपनी दुनिया के असंख्य दीपों को तेरी ज्वाला से जला लूँगा और तेरे मन्दिर की यज्ञवेदी पर रख दूँगा!

नहीं, मैं अपनी इन्द्रियों को घोर संयम के सींखचों में बन्द नहीं करूँगा। मेरे दर्शन, श्रवण और स्पर्श में तेरा आनन्द भरा होगा!

मेरे सब भ्रम आनन्द-यज्ञ की समिधा बनकर प्रकाशित होंगे और मेरी सब वासनायें प्रेम-फल के रूप में परिपक्व होंगी!

अखंड अन्वेषण : १७४

जब सब कुछ नया था, सृष्टि का नया सृजन हुआ था, जब
तारे नई आभा से चमक रहे थे, तब सब देवता आकाश
में एकत्र हुए। सबने मिलकर गीत गाया—"ओह! कैसी
दिव्य पूर्णता है, विश्व में कैसी पूर्णता है!"

इसी बीच अचानक कहीं से आवाज़ आई—"एक तारा कहीं
खो गया, ज्योति-भरे दीपों की माला एक स्थान पर
टूट गई है। वह तारा कहाँ गया?"

देवताओं की वीणा के सुनहरी तार मौन होगये। चारों ओर
से व्याकुल स्वरों में पुकार मच गई—"ओह! वह खोया
हुआ तारा ही तो सर्वश्रेष्ठ तारा था, वही तो सम्पूर्ण
सृष्टि के ताज़ का एकमात्र चमकता हीरा था।"

उस दिन से उस तारे की अनन्त खोज जारी है। सब एक
स्वर से यही कह रहे हैं कि उसके साथ विश्व ने अपना
अखण्ड आनन्द खो दिया।

केवल रात के गहन अन्धकार में तारे मुसकाते हैं और एक
दूसरे के कान में धीमे से कहते हैं—"यह अन्वेषण व्यर्थ
है! अखण्ड पूर्णता तो अब भी विश्व के कण-कण में
स्वयं व्याप्त है!"

शुभ्र-मेघ : १७५

वसंत-काल के व्यर्थ उड़ते हुए अवशिष्ट मेघ-खंडों की तरह मैं भी निष्प्रयोजन घूम रहा हूँ।

मेरे सदा-प्रकाशित सूर्य ! तेरे स्पर्श ने अभी तक इनको जल-कणों में द्रवित नहीं किया, जिससे ये कण तेरे प्रकाश में खोजाते। इसलिये, मैं अभी तक तेरी विदाई के काल—मास, वर्ष और संवत्सरों की गणना कर रहा हूँ; कब इनका अन्त होगा ?

यदि यही तेरी इच्छा है, यही तेरा खेल है, तो भी मेरी रिक्तता को रंगों से भर दे, स्वर्ण से चमका दे, उड़ती हवा पर तैरा दे और सर्वत्र फैला दे !

और फिर, यदि तू चाहे तो मैं, दिन का खेल समाप्त होने पर, रात के अंधेरे में पिलघ कर वाष्प बन जाऊँगा, या प्रभात की मुसकान बन जाऊँगा या स्फटिक-सा निर्मल ओस का कण बनकर पृथ्वी पर गिर जाऊँगा !

उपवन : १७६

अवकाश के दिनों में मैं बहुत बार अपने व्यर्थ नष्ट किये क्षणों के लिये व्याकुल हो चुका हूँ। किन्तु, नष्ट कहाँ होते हैं वे क्षण ? मेरे प्रभु ! मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण तो तूने अपने हाथों में ले लिया है।

हर वस्तु के अन्तराल में बैठ कर तू उसे विकसित कर रहा है; बीज को अंकुर, कलियों को फूल और फूलों को फलों का रूप दे रहा है।

थककर मैं अपने बिछौने पर सोने चला था, सोचता था मेरे कामों का अंत नहीं होगा।

किन्तु, सुबह उठकर देखा तो मेरे उपवन के सब फूल स्वतः खिल गये थे। मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही !

अनन्त समय : १७७

प्रभु ! तेरे हाथों में अनन्त समय है। तेरे समय की घड़ियाँ गिनने वाला कोई क्या है ?

अनगिनत दिन और रात एक के बाद एक आते और जाते हैं ! युगों के युग उपवन के फूलों के समान खिलते और झड़ते जाते हैं। तुझे इसकी चिन्ता नहीं। तेरी प्रतीक्षा में अधीरता नहीं आती।

एक बनफूल को पूर्ण विकसित करने में ही तू अनेक सदियों का समय व्यतीत कर सकता है।

मेरे पास व्यर्थ खाने को एक भी क्षण नहीं। समय की यह कमी मुझे अपना काम समाप्त करने में अस्तव्यस्त कर देती है। मैं एक क्षण का भी विलम्ब सहन नहीं कर सकता।

इसीलिये मेरा समय उन झगड़ालू दावेदारों को बाँटने में ही बीत जाता है जो मेरे समय पर अधिकार का दावा करते हैं। और, तेरी यज्ञबेदी अंत तक पूजा के अर्घ्य-नैवेद्य से रिक्त रह जाती है।

दिवसांत पर मैं विलंब के डर से अधीर हो जाता हूँ; शंकित होता हूँ कि कहीं तेरे मन्दिर-द्वार बंद न हो जाँय; किंतु आश्चर्य ! पूजा के लिये हर बार पर्याप्त समय शेष रहता है।

मृत्यु-वन्दन : १७८

प्रभु ! आज तेरा संदेश लेकर मृत्यु मेरे द्वार पर आई है।
उसने यहाँ पहुँचने के लिये अज्ञात सागरों को पार
किया है। रात अंधेरी है, मेरा हृदय भयभीत है—
फिर भी, दीपक हाथ में लेकर मैं अपना द्वार खोलूँगा
और उसका नतमस्तक अभिवादन करूँगा। तेरा दूत
मेरे द्वार पर आया है !

हाथ जोड़ और आँखों में आँसू भरकर उसकी पूजा करूँगा।
और उसके चरणों में अपने हृदय का अनमोल खजाना
रख दूँगा !

वह अपना निर्दिष्ट कार्य करके लौट जायगी और उसके पीछे
मेरी निर्जन कुटी में मेरा अकेला 'अहं' ही तुझे
अंतिम भेंट देने के लिये मेरे पास शेष रह जायगा !

हृदय में प्रबल आशा लिये मैं अपने घर के कोने-कोने में उसे खोज रहा हूँ; वह नहीं मिलती।

मेरा छोटा-सा घर है, जो इसमें खोगया वह फिर कभी नहीं मिला।

तेरा भुवन इतना विशाल है! हाँ, उसे खोजता खोजता मैं यहाँ तेरे द्वार तक पहुँच जाता हूँ।

सन्ध्याकाश के स्वर्ण-मंडित-मंडप के नीचे खड़े होकर मैं बड़ी उत्सुकता से तेरी ओर देखता हूँ!

यहाँ मैं अनन्त-सागर के उस तट पर पहुँच जाता हूँ जहाँ आकर कुछ भी नष्ट नहीं होता। किंतु जहाँ आँसुओं की ओट में आशा, सुख, आनन्द तथा संसार के सब आकार ओझल हो जाते हैं।

नाथ! मेरे रिक्त जीवन को उस सागर में पूरी तरह डुबा दो! और एक बार फिर मुझे विश्व के उस व्यापक विभुत्व का मधुर स्पर्श होने दो!

भग्न-मंदिर : १८०

हे भग्न-मंदिर के देवता! वीणा की खंडित तारें अब तेरा स्तुतिगान नहीं करतीं। सन्ध्याकाल की घंटियां तेरी आरती का संकेत नहीं देतीं। तेरे निकट का पवन प्रशान्त और मौन है।

तेरी भग्न कुटीर में वसन्त की हवा आती है। हवा में फूलों का सुवास भरा है। लेकिन, अब ये फूल तेरा नैवेद्य नहीं बनते।

तेरा पुराना उपासक अब भी तेरी पूजा की कामना लेकर व्यर्थ ही आता है और लौट जाता है। शाम को, जब दीपक का प्रकाश धूलि की धुन्ध में मिल जाता है, वह थका-हारा उपासक, हृदय में अपार अतृप्ति छिपाये, इस टूटे मन्दिर में आता है।

हे टूटे मन्दिर के देवता! कई उत्सवों के दिन समारोह-रहित आते हैं और कई पूजा की रातें दीप-रहित बीत जाती हैं।

चतुर कलाकार बहुत-सी नई प्रतिमाएं बनाते हैं जो समय आने पर अज्ञात की पवित्र धारा में बहा दी जाती हैं!

केवल टूटे मन्दिर का देवता इस अमर उपेक्षा में अपूजित रह जाता है!

मैं जानता हूँ, वह दीन भी आएगा जब नेत्रों के सामने से
पृथ्वी ओझल हो जायगी और आंखों पर अन्तिम पर्दा
डालकर प्राण चुपचाप इस पिंजड़े से उड़ जाएंगे !

तब भी तारे रात को चमकेंगे और प्रभात में सूर्य उदय होगा !
समुद्र की लहरों के समान समय की घड़ियों का आरोह-
अवरोह भी होगा और उससे सुख-दुःख के उच्छ्वास भी
निकलेंगे !

जब मैं जीवन की घड़ियों के इस अंत की कल्पना करता हूँ
तो समय की सीमायें टूट जाती हैं और मैं मृत्यु के
प्रकाश में तेरी दुनिया के बिखरे हुए वैभव को नये रूप
में देखता हूँ। इसकी तुच्छ से तुच्छ, निम्न से निम्न
जगह में और अल्प से अल्प प्राणी में भी चमत्कार
दिखाई देता है।

मेरा कामनाओं का संसार और मेरे हाथ में आये दुनिया
के खज़ाने—सब एक-एक कर मेरे सामने से गुँजरते हैं—
गुज़रने दो ! मेरे पास वही शेष रहने दो जिसका मैंने
सदा तिरस्कार किया और जिसे पाने को सदा उदासीन
रहा !

यात्रा का अन्त : १८२

मित्रो! विदाई के इस अवसर पर मेरे लिये मंगल-कामना करो!

आकाश पर प्रभात की अरुणाई छाई है और मेरा मार्ग बहुत ही रमणीक है।
यह न पूछो कि मेरे पास साथ ले जाने को कौन-सा पाथेय है। खाली हाथ किन्तु आशा-भरे हृदय से मैंने यात्रा प्रराम्भ की है।
अपने विवाह का मंगल परिधान पहिन कर मैं चलूँगा, यात्रा की मामूली लाल-खाकी वर्दी नहीं। मार्ग में संकट हैं, फिर भी मैं निर्भय हूँ।

यात्रा के अंत में संध्या का तारा मेरा स्वागत करेगा और राजद्वार पर शाम की शहनाई मेरा अभिनंदन करेगी!
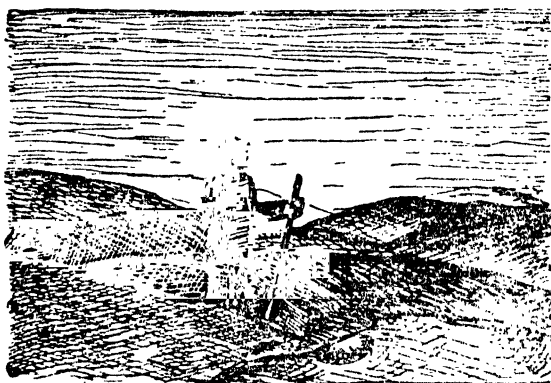
जाने की छुट्टी मिल गई।
शुभ कामना करो, मेरे बन्धु!
प्रणाम करके तुमसे विदाई माँगता हूँ।
अंतिम विदा!
यह लो मेरे द्वार की तालिका—इस घर पर अब मेरा कोई स्वत्व नहीं। विदाई के दो शब्दों के अतिरिक्त तुमसे कुछ नहीं चाहता।

लम्बे काल तक हम साथ-साथ रहे। मैंने तुम्हें दिया कम, लिया अधिक। अब नया दिन निकल आया है, मेरे अंधेरे में जलने वाला दीपक बुझ गया है।

मुझे दूर देश से निमन्त्रण आया है—
प्रस्थान के लिए अब मैं तैयार हूँ—
बिदा—

अब यह सब व्यर्थ है, निष्प्रयोजन है !
समय आ गया है कि इस सबका विसर्जन करदूँ—
जानता हूँ, तेरे हाथों से यह सब अनायास हो जायगा।
जो कुछ करना शेष है अविलंब हो जायगा
इसलिये हे मेरे हृदय ! चुपचाप अपनी हार मानले, जिस
स्थान का सम्मान तुझे प्राप्त है उसी में सन्तोष कर।
जो नहीं है, उसकी आकांक्षा भी छोड़ दे।

मेरे दीपक की लौ हवा के छोटे-से झोंके में भी बुझ जाती है।
उसे फिर जलाने की चिन्ता में मैं अन्य सारे
काम-काज बार-बार भूल जाता हूँ !
इस बार मैं सावधान रहूँगा; जमीन पर चटाई बिछाकर
अंधेरे में अकेला ही संतोष से बैठा रहूँगा;
मेरे प्रिय ! जब तेरा जी चाहे, चुपचाप आना और मेरे पास
बैठ जाना।

अज्ञात : १८५

मुझे गर्व था कि मैं तुझे जानता हूँ !
मेरी सभी रचनाओं में दुनियावाले तेरी छवि देखते हैं।
यहाँ आकर वे पूछते हैं, "यह कौन है" ?
मैं अवाक् रह जाता हूँ। "कौन जाने" यही कह देता हूँ।
वे मुझे भला-बुरा कहते हुए अवज्ञा से मुख फेरकर चले जाते हैं।

तेरी छवि मुस्कराती रहती है !
तेरी कहानी को अमर गीतों में बाँधता हूँ। मेरे हृदय के निर्झर से तेरे गीत स्वतः बहते रहते हैं।
वे आकर पूछते हैं, "इन गीतों का अर्थ क्या है ?"
उन्हें क्या कहूँ ? यही कह देता हूँ, "कौन जाने, क्या अर्थ है इनका ?"
वे अवज्ञा से मुख फेर कर चले जाते हैं।
तू मुस्कराता हुआ बैठा रहता है !

दिनानुदिन : १८६

प्राणपति ! क्या दिन प्रतिदिन मुझे तुम्हारे सामने आना होगा ? दिन प्रतिदिन हाथ बाँधकर तुम्हारे सामने खड़ा रहना होगा ?

क्या इस सूने नीरव आकाश के नीचे इसी तरह सदा नतमस्तक खड़ा रहना होगा ?

इस कर्म-प्रधान विश्व में, श्रम और संघर्ष के तुमुल कोलाहल और वेग से भागते जन-समूह में, क्या मुझे दिन प्रतिदिन तुम्हारे सामने नतमस्तक खड़ा रहना होगा ?

जब मेरा काम समाप्त हो जाएगा, तब भी क्या मुझे इस सूने नीरव आकाश के नीचे इसी तरह तेरे सामने खड़ा रहना होगा ?

मेरे प्रभु की यही इच्छा है कि अब मैं कुछ भी ऊँचे स्वर में न
पुकारूँ। अब मुझे सब कुछ मन्द स्वर में कहना होगा।
मेरे हृदय की व्यथा गीतों की गुनगुनाहट में ही व्यक्त
होगी!

लोग राजा के बाज़ार की ओर भाग रहे हैं। वहाँ सब चीज़ों
के व्यापारी आये हैं। क्रय-विक्रय हो रहा है। किन्तु,
मैंने दिन दोपहर की व्यग्रता के बीच असमय ही काम-
काज से हाथ खींच लिया।
अब क्यों न असमय ही मेरे उपवन में भी फूल खिल उठें
और क्यों न असमय ही मधुमक्खियाँ अपना मधुर
गुंजन आरम्भ करदें!

भले-बुरे के माप-तोल में ही मेरी सारी उम्र गुज़र गई। मेरे
अवकाश के साथी की इच्छा है कि अब मैं केवल
उससे खेलूँ। न जाने, किस निष्प्रयोजन कार्य के लिये
मुझे बुलाया है?

मैं अपने महत्व को बढ़ाता जाऊँ, उसका चारों ओर विस्तार
करता जाऊँ, उसकी रंगीन छाया तेरी उज्ज्वल ज्योत्स्ना
पर अंकित हो—यही तेरी माया है।
तू अपने ही आप को स्वतः भागों में विभक्त करता है और
उस विभिन्न रूपों को विविध नाम दे देता है। तेरे इस
स्वयं विभाजन का ही एक रूप मेरा देह है।
तेरे प्रखर गीत का गुंजन ही आकाश के अनेक रंगों के अश्रु-
कणों में प्रतिध्वनित हो रहा है; वही गुंजन विविध
रूपों की मुसकान, भय और आशा के रूपों में व्यक्त
होता है! लहरें उठती हैं और गिर जाती है, स्वप्न
बनते हैं और मिट जाते हैं, मुझ में ही तेरी जय-पराजय
दोनों का प्रतिबिम्ब है!
जो यवनिका तूने संसार की नाट्यशाला में खड़ी की है, उस पर
दिन और रात्रि की तूलिका से असंख्य चित्र बने हुए
हैं। उसके पीछे तेरा सिंहासन है, जो आश्चर्यपूर्ण
तिरछे-बाँके रहस्यों के ताने-बाने से बुना गया है; जिसमें
एक भी सीधी रेखा नहीं है।
सम्पूर्ण आकाश तेरे-मेरे महान प्रदर्शनों से ढका हुआ है।
तेरी-मेरी सुर-तानों से समस्त द्युलोक गूंज रहा है, तेरी-
मेरी आँख-मिचौनी में युगों के युग बीतते जाते हैं।

तेरी सूर्य-रश्मि अपनी भुजाओं को फैलाकर मेरी इस पृथ्वी पर आती है और मेरे आँसू, उच्छ्वास और गीतों से बने बादलों को तेरे चरणों तक ले जाने के लिये दिन-भर मेरे द्वार पर खड़ी रहती है!

तू, बड़े चाव से अपने तारों-भरे वक्ष पर धुंधले बादलों की अढ़नी ओढ़ लेता है; उसे कई रूपों और तहों में बदलता रहता हैं, और उसे प्रतिक्षण बदलने वाली आभाओं में रंगता रहता है!

तेरी वह ओढ़नी बड़ी हल्की, अश्रुस्निग्ध और मनहर साँवले रंग की है, तभी तुझे इसका मोह है। और, यही कारण है कि वह तेरे अतिशय शुभ्र प्रखर प्रकाश को अपनी करुण छाया से ढक लेती है!

एक मधुर स्मृति : १९०

मैंने तुझ से कुछ नहीं माँगा; यहाँ तक कि अपना नाम भी तेरे कानों में न कहा।

जब तू विदा होने लगा मैं मुग्ध भाव से अवाक् खड़ा रह गया। उस समय कूएं पर मैं अकेला ही था। वृक्षों की छाया कूएं पर पड़ रही थी। पनिहारिनें अपने मिट्टी के घड़ों को ऊपर तक पानी से भरकर घरों को लौट चुकीं थीं। जाते हुए उन्होंने मुझे बुलाया था। चलो हमारे साथ, संध्या हो चली।" किन्तु, मैं अपने ही अस्पष्ट-से गीतों को गुनगुनाता हुआ वहीं खड़ा रहा।

जब तू आया तो मैंने तेरे पैरों की आहट नहीं सुनी। तेरी आँखें जब मुझसे मिलीं तो उनमें विषाद भरा था; तेरे स्वर में थकान समाई थी जब तूने कहा था—"अरे, मैं बहुत प्यासा हूँ।" मैं अपने दिवास्वप्नों से जागकर उठ बैठा और अपनी गागर से तेरी अंजलि में निर्मल जल डालने लगा। उस समय वृक्षों के पत्ते मरमर-ध्वनि कर उठे; कोयल किसी अदृश्य अंधकार से कूक उठी और सड़क के मोड़ वाले पौधे से कदम्ब के फूलों की महक फैल गई!

तूने जब मेरा नाम पूछा तो मैं लाज से चुप खड़ा रहा। भला, ऐसा कौन-सा उपकार किया था मैंने कि तू मुझे याद रखने के लिये नाम पूछता? हाँ—तेरी प्यास बुझाने

को मैं पानी दे सका—यह मधुर स्मृति सदा मेरे हृदय
में बनी रहेगी और जीवन के क्षणों को मधुर बनाती
रहेगी।

तब सुबह की घड़ियाँ देर से बीतेंगी; पक्षी थकान-भरे स्वर से
चहकेंगे और ऊपर नीम के पत्तों की मरमर में आलस्य
का नशा भरा होगा और मैं बैठा हुआ कुछ सोचूँगा—
कुछ देर, बहुत देर कुछ सोचता रहूँगा।

प्रकाश-धारा : १६१
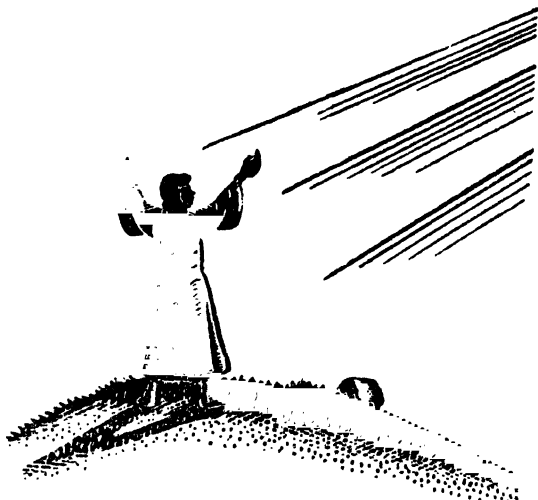
प्रकाश, मेरे प्रकाश, विश्व-व्यापी प्रकाश, नयनाभिराम प्रकाश,
हृदय-मधुर प्रकाश !

यह प्रकाश ही मेरे जीवन के केन्द्र-विन्दु पर नृत्य करता है;
यह प्रकाश ही मेरे प्रेम की तारों को झनझनाता है;
तब आकाश के द्वार खुल जाते हैं, पवन वेग से दौड़ने
गता है और पृथ्वी का हास्य विश्व के कण-कण में
व्याप्त ह जाता है !

तितलियाँ प्रकाश के अगाध नील जल पर अपने पंखों से
तैरती हैं। लिली और जूही की कलियाँ प्रकाश-तरंगों
के शिखर पर खिल उठती हैं।
यही प्रकाश हर बादल को स्वर्णीय आभा से रंग देता है।
और यही प्रकाश असंख्य मोतियों को बेपरवाही से
बिखेर देता है।
उस समय पत्ते-पत्ते पर उल्लास छा जाता है और असीम
प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती है।
स्वर्ग की प्रकाश-धारा ने अपने तटों को डुबो दिया और उसका
अतुल जल-प्रवाह चारों ओर फैल गया है!

चूड़ियाँ : १९२

असंख्य तारों और विविध रंग के रत्नों से जड़ी हुई तेरी
चूड़ियाँ कितनी सुन्दर हैं! किन्तु मुझे तेरी तलवार ही
अधिक सुन्दर लगती है; जिसकी धार बिजली की तरह
तेज और विष्णु के दिव्य-वाहन गरुण के पंखों की तरह
जो सूर्यास्त की रक्तिमा पर इतनी सुन्दरता से सधे हुए
हैं—बाँकी है!

यह तलवार मृत्यु के अन्तिम आघात पर जीवन की मधुर
वेदना के समान काँपने वाली है और यह उस आत्मिक
ज्वाला की तरह पवित्र है जो एक ही लपट में पार्थिव
अस्थि-मज्जा को भस्म कर देती है!

तेरी चूड़ियाँ सचमुच बहुत सुन्दर है; किन्तु द्युलोक के
स्वामी! तेरी तलवार अलौकिक सौन्दर्य का अतुलनीय
प्रतीक है, जिसके देखने से ही नहीं विचार से भी आत्मा
काँप उठती है!

पुष्पहार नहीं, तलवार : १६३

मन में तो आया कि तुझसे तेरा पुष्पहार माँग लूँ—लेकिन
मुख से शब्द न निकले, साहस नहीं हुआ। तब रात-
भर प्रतीक्षा करती रही कि तेरे जाने के बाद तेरी शैया
पर बिखरे फूलों को चुन लूंगी! प्रभात होते ही मैं एक
भिखारी की तरह तड़प कर वहाँ पहुंची तो देखा वहाँ
पुष्पहार नहीं था, फूल नहीं थे, केवल एक-दो पंखड़ियाँ
बिखरी पड़ी थीं!

और, आश्चर्य! यह क्या है? तेरे प्रेम की यह निशानी कैसी?
ना तो यह पुष्प है, ना कलिका, नाही यह कोई सुवास
है। यह तो तेरी तेजस्विनी तलवार है; जिसमें आग
की लपट और बिजली की कड़क भरी है। प्रभात की
प्रथम किरण वातायन से आकर तेरी शैया पर बिखरी
थी। प्रभात के चहचहाते पक्षी पूछ रहे थे—
"सुन्दरि! तुझे कौन-सी निशानी मिली?" नहीं,
यह ना तो फूल है, ना कालिका और ना ही यह कोई
सुवास है।

विस्मय-विभोर मैं सोच रही हूँ, "यह कैसा प्रेमोपहार है?"
इसे कहाँ रखूँ? इसे पहनते लाज आती है। इतनी
अबला हूँ मैं—इसके पक्ष-स्पर्श से ही मुझे व्यथा होती
है। फिर भी मैं तेरे इस व्यथा देने वाले प्रेमचिन्ह को
अवश्य धारण करूँगी।

अब मुझे संसार में किसी का भय नहीं। इस जीवन-युद्ध में अब विजय ही विजय है! मृत्यु की यह दूतिका मेरी जीवन-संगिनी रहेगी। मैं इसे जीवन के अलंकारों से विभूषित करूँगी। तेरी तलवार मेरे बंधनों को छिन्न कर देगी। अब संसार में मेरे लिये कोई भय नहीं होगा!

आज से मैं सब तुच्छ भूषणों, अलंकारों को छोड़ दूँगी। मेरे हृदय-देवता! अब मैं अंधेरे कोनों में रोती-रोती प्रतीक्षा नहीं किया करूँगी, अब मैं व्यर्थ के मीठे शब्दों से स्तुति-गान नहीं किया करूँगी। तेरी तलवार ही मेरी सर्वोच्च भूषा होगी। नकली अलंकारों का अब मैं सर्वथा परित्याग कर दूँगी।

अतिथि : १६४

रात का अंधकार बढ़ गया था। हमारे दिन के सब काम
निपट गये थे। हमने सोचा, आने वाले सभी अतिथि
आ चुके, गांव के प्रमुखद्वार बन्द कर लिये। केवल कुछ
ने कहा—"अभी राजा की सवारी आने वाली है।"
हम हँस दिये—'नहीं, यह नहीं हो सकता।"

फिर, शायद द्वार पर हल्की-सी आहट हुई, हमने समझा
हवा का झोंका होगा। दीये बुझाकर हम सो गये। केवल
कुछ ने कहा—"यह राजदूत है!" हम हँस दिये—
"नहीं; यह हवा का झोंका है।"

फिर आधी रात की सुनसान में एक आवाज़ उठी। सोते-सोते
सोचा, यह वही दूर बादलों की गरज है। पृथ्वी काँपी
दीवारें हिलीं, हमारी नींद में विघ्न पड़ गया। केवल
कुछ ने कहा—"यह राजा के रथ का स्वर है!" हमने
अलसाई आवाज़ में कहा—"नहीं यह तो केवल
बादलों की गड़गड़ाहट है।"

रात अभी अंधेरी ही थी कि दुन्दुभि बज उठी। आवाज़
आई—"उठो, बिलम्ब न करो' हमने डर से काँपते हुए
दिल थाम लिया। कुछ ने कहा—"वह देखो, राजा
की रथध्वजा आकाश में फहरा रही है।" हम चौक कर
खड़े होगये और बोले उठे—"समय नहीं रहा, देरी
न करो!"

राजा की सवारी आगई थी, किन्तु, पूजा का दीपक कहाँ था ? जयमाल कहाँ थी ? उसके बैठने को सिंहासन कहाँ था ? उसके स्वागत के लिये सुसज्जित मंडप कहाँ था ? कुछ ने कहा—"यह व्याकुलता व्यर्थ है, उसका खाली हाथ अभिवादन करो, उसे अपने शून्य घरों में निःसंकोच लाओ !"

"द्वार खोलदो, स्वागत के लिये शंखों पर तुमुल ध्वनि होने दो। अपने राजा का, जो रात्त के निबिड़ अन्धेरे में आया है अपने अन्धकार-भरे घरों में स्वागत करो। आकाश में बिजली की कड़क है, अन्धकार विद्युत्-प्रकाश में कांप रहा है। ऐसे समय अपनी फटी-पुरानी चटाई लाकर आँगन में बिछा दो।"

हमारी अन्धेरी रातों का राजा अचानक ही आंधी-तूफ़ान के साथ आया है !

मैं उस समय गांव के द्वार-द्वार पर भिक्षा माँग रहा था, जब
तेरा स्वर्ण-रथ दूरी पर दिखाई दिया मैंने मानो कोई सुन्दर
सपना-सा देखा हो। मेरे विस्मय की सीमा न थी कि
यह राजाओं का राजा कौन है जो इधर आ रहा था?
मेरी आशाओं ने सिर उठाया, सोचा, शायद मेरे दुर्भाग्य की
घड़ियाँ समाप्त होगईं। मैं वहीं खड़ा होगया और
सोचने लगा कब रथ की धूल में स्वर्ण-मुहरें गिरेंगी
और कब राजा के हाथ भिखारियों की झोलियाँ भरने
को उठेंगे!

वह रथ अचानक वहीं ठहरा जहां मैं खड़ा था। तेरे नेत्र
मुझसे मिले, तू मुसकराता हुआ रथ से नीचे उतरा।
मैंने सोचा, मेरा भाग्य-सूर्य अब उदय होने ही वाला
है। तब अचानक तूने मेरे पास आकर अपना दक्षिण
हाथ मेरी ओर बढ़ा दिया और कहा—"मुझे देने को
तू जो लाया है, दे दे।"

कितना विचित्र उपहास था। एक राजा ने भिखारी के सामने
भिक्षा के लिये हाथ फैलाया था। मैं कुछ देर विस्मय-
मुग्ध खड़ा देखता रहा, फिर अपनी झोली से चावल
की सबसे छोटी कनी निकाल कर तेरे हाथ में रख दी।
किन्तु, मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही जब दिन ढलने पर

मैंने अपनी झोली खाली की और देखा कि मेरी
झोली में पड़े चावल की कनियों में एक कनी सोने की
भी थी।

मैं रोने लगा, बेहद रोने लगा। जो कुछ मेरी झोली में
था, वह सभी क्यों न तुझे दे डाला!

मौन-भरा प्रभात-सागर पक्षियों के चहचहाने की आवाज़ में फूट पड़ा; मार्ग के फूल उद्वेग से खिल उठे, और स्वर्ण के कण क्षितिज पर मंडराते मेघ-खंडों पर बिखर गये—
किन्तु, हम व्यस्त भाव से आगे बढ़ते गये।

हमने ना गीत गाये, ना मंगल-वाद्य बजाये; ना ही हम गांव के मेले में सौदा करने गये; ना हम एक शब्द ही बोले, ना ही मुस्कराये; एक क्षण के लिये भी हमने विराम नहीं लिया। अपने कदमों में और भी वेग भरकर हम
आगे ही आगे बढ़ते गये।

आखिर, सूर्य मध्य-आकाश में आगया। कबूतरों ने छांव में आश्रय ले लिया। दोपहर की लूह में वृक्षों के सूखे पत्ते फड़फड़ाने लगे। चरवाहा घने वृक्ष की छाया में सोकर सुन्दर सपने लेने लगा। मैं भी सरोवर के निकट घास
पर पैर पसार लेट गया।

मेरे साथी मेरा उपहास करने लगे। गर्व से सिर ऊंचा कर वे आगे बढ़ते गये। पीछे मुड़कर देखा भी नहीं। चलते-चलते वे नीलाकाश की नीलिमा में लुप्त होगये। उन्होंने असंख्य पर्वतों और दूर-दूर के विचित्र देशों का परिभ्रमण किया। लेकिन, मैं वहीं घास पर अकेला लेटा
रहा।

आत्मग्लानि और जनापवाद ने मुझे कई बार टोंच-टोंच कर उठाना चाहा, किन्तु मुझ पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। आखिर, मैंने तिरस्कार की सुखद गहराई में और उस धुंधले आकाश की छाया में अपने को बिल्कुल खो दिया!

तब, रवि-किरणों से अलंकृत हरित उदासी की मूर्छना मेरे हृदय पर छानी शुरू होगई। मैं यह भी भूल गया कि इस यात्रा के लिये मैंने क्यों प्रस्थान किया था। और तब अंत में मैंने छायामय गीतों की रहस्यमूर्त्ति के सामने सर्वस्व अर्पित कर दिया!

अन्त में, जब नींद से जागा और आँखें खोलीं, मैंने तुझे अपने पार्श्व में खड़ा पाया। तू ही मेरी निद्रा की शून्यता को अपनी मुस्कानों से भर रहा था। न जाने क्यों, मैं व्यर्थ ही डर रहा था कि यह यात्रा लम्बी और थका देने वाली होगी और तेरे समीप पहुँचने का संघर्ष बड़ा कठिन होगा!

सारी रात उसकी राह देखते बीत गई।

अब प्रभात का समय हुआ। कहीं ऐसा न हो कि वह मेरे सो जाने के बाद अचानक ही द्वार पर आ जाय। मित्रो, मेरे द्वार के कपाट खुले रखना – उसे आने से रोकना मत।

उसके पैरों की आहट से ही यदि मेरी नींद न टूट जाय तो तुम मुझे मत जगाना। मैं प्रभात में पक्षियों के कलरव या उषागमन के उत्सव की किलकारियों से चौंक कर नहीं उठना चाहता। मुझे सोने देना। यदि मेरे प्रभु भी अचानक द्वार पर आजाएँ तो भी मुझे चैन की नींद सोने देना!

मेरी नींद, मेरी अनमोल नींद, केवल उसका स्पर्श पाकर लुप्त होजाने की प्रतीक्षा कर रही है। मेरी मुंदी आँखें

*केवल उसकी मुस्कान का स्पर्श पाने को अपनी पलकें
उठाएँगी। वह मेरे सामने आयगा—जैसे कोई स्वप्न
अंधेरी नींद से फूटकर बाहर आता है।*

*उसे आने देना, मेरी आंखों के सामने प्रकट होने देना, जैसे
सृष्टि की प्रथम किरण आई थी, प्रकृति का प्रथम रूप
सामने आया था! मेरी जागृत आत्मा का प्रथम रोमांच
उसके प्रथम दर्शन में ही हो—यही मेरी इच्छा है!*

*और, अपनी चेतना में वापस आना मेरे लिये प्रभु में वापिस
जाना हो जाय—यही मेरी कामना है!*

अमरता की मुहर : १६८

वह दिन था, जब मैं तुम्हारे सत्कार के लिये सर्वथा असावधान बैठा था। तुमने अचानक, अनजाने और अनिमन्त्रित ही एक साधारण व्यक्ति के वेष में, मेरे हृदय में प्रवेश कर लिया। यहां आकर तुमने मेरे जीवन के अनेक विनश्वर क्षणों पर अमरता की मुहर अंकित कर दी।

आज, जब अचानक उनपर प्रकाश पड़ा, तुम्हारी मुहर पर मेरी नज़र गई तो मैंने देखा कि अमरता से अंकित वे दिव्य क्षण मेरे जीवन-पट पर हर्ष-विषाद की विस्मृत स्मृतियों के साथ धूल में बिखरे पड़े हैं!

तुमने मुझे धूलि में खेलता देखकर घृणा से मुख नहीं मोड़ा। तुम मेरे पास आते गये—मैं तुम्हारी पद-ध्वनि सुनता रहा। धूलि में खेलते मैंने उस दिन तुम्हारे पैरों की जो आहट सुनी थी, वही आज विश्व के कण-कण से; आकाश के हर सितारे से, ध्वनित हो रही है!

इसी में मुझे आनन्द आता है—
मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहूँ, और अपलक देखता रहूँ उस
मार्ग को, जहाँ छाया प्रकाश की अनुगामिनी है और
वर्षा ग्रीष्म की अनुचर बनती है।

अज्ञात आकाश से संदेश लाने वाले दूत उस मार्ग पर आकर
मेरा अभिनन्दन करते हैं और वेग से चले जाते हैं।
मेरा हृदय हर्ष से भर जाता है और मुझे छूकर बहती
हुई हवा मीठे श्वास छोड़ जाती है।

तेरे द्वार पर प्रभात से संध्या तक यही आशा लगाये बैठा
रहता हूँ कि कभी अकस्मात ही वह दिव्य क्षण आ
जायगा जब तुझ से साक्षात भेंट हो जायगी!

तब तक मैं अकेला बैठा कभी मुस्कराता हूँ—कभी गाता हूँ।
इस बीच यह देखो, मेरे आस-पास का पवन मिलन की
सुवासित आशा से भर गया है!

प्रियतम ! वहाँ सबसे पीछे हटकर उस घनी छाया की ओट
में क्यों खड़े हो ? वे तुम्हें धकेल, धूल भरे रास्ते पर
गिरा, आगे बढ़ जाते हैं। मैं तुम्हारी पूजा की थाली
लेकर यहाँ कबसे प्रतीक्षा में बैठा हूँ ! राहगीर आते
हैं और मेरी थाली में से एक-एक फूल चुनकर ले जाते
हैं। मेरी थाली रिक्तप्राय होगई है।

प्रभात की बेला बीत गई, मध्याह्न भी बीता। संध्या की छाया
में मेरी पलकें नींद से झुकने लगीं। घर लौटते हुए
लोग मेरी ओर नज़र उठाते हैं और व्यंग से मुस्करा
देते हैं। मैं लज्जा से सिर झुका लेता हूँ। मैं यहाँ एक
भिक्षुकन्या की तरह दीनभाव से मुख को ओढ़नी से
ढके बैठा हूँ। लोग जब पूछते है—"क्या चाहिये ?"
तब मैं चुपचाप सिर झुका लेता हूँ, उत्तर नहीं देता।

हाय ! मैं उनसे यह भी नहीं कह पाता कि 'मैं तुम्हारी राह में
यहाँ बैठा हूँ, तमने आने का वचन दिया है।' यह कहते
भी मुझे लाज आती है कि यह दरिद्रता से भरी झोली
मैंने अपने शहंशाह के सत्कार के लिये रख छोड़ी है।
हाय ! इस गौरव को मैं अपने हृदय में अंतराल में ही
छिपाकर रख लेता हूँ।

आज इस हरी घास के मैदान पर बैठा २ मैं आकाश की
ओर अपलक देख रहा हूँ और तुम्हारे अचानक आ जाने

से इन स्वप्नों से दिल बहला रहा हूँ—सारे प्रदीप जग-
मगा उठे, तुम्हारे रथ पर स्वर्ण-ध्वजा फहरा उठी,
अपने रथ से उतर कर तुमने मुझे धूलि-धूसर पृथ्वी से
उठाकर अपने साथ रथ में बिठा लिया—फटे वस्त्रों वाली,
मलिन, अभिमान और शर्म से कांपती भिक्षु-कन्या को
अपने आंचल में ढक लिया; यह देखकर लोग अवाक
स्तम्भित रह गये।

लेकिन यह स्वप्न, स्वप्न ही रहा। समय बीतता गया। तुम्हारे
रथ के पहियों का शब्द भी सुनाई नहीं दिया। रास्ते
पर सैकड़ों जुलूस जय-जयकार का तुमुल कोलाहल
करते गुज़र गये। केवल तुम्हीं उनकी छाया में सबसे
पीछे हट कर खड़े रहे। और यहाँ मैं ही प्रतीक्षा की
लम्बी घड़ियों से थका-हारा अपने आँसुओं में दिल की
व्यथा को बहा डालने के लिये बैठा रहा!

करुणाघन ! : २०१

मेरे करुणाघन ! मेरे प्रभु ! मेरा हृदय सूखा पड़ा है। बरसों से यहाँ मेघ नहीं आये। क्षितिज का नग्न रूप बड़ा भयंकर हो उठा है। कहीं हल्की-सी बदली भी नज़र नहीं आती, कहीं से दो-चार बूंद पानी गिरने के भी लक्षण दिखाई नहीं देते।

तुम चाहो तो क्षण भर में मृत्यु-सी काली डरावनी आंधी चला दो और बिजली के कोड़ों से आकाश के ओर-घोर को थर्रा दो। प्रभु! इस निष्ठुर गर्मी को, जो हृदय को घातक-नैराश्य से झुलसा रही है, वापस बुलालो!

अपनी करुणा के सजल मेघों को नीचे झुकादो प्रभु! जैसे पिता के क्रोधपूर्ण नेत्रों से बालक की रक्षा करने के लिये माता अपने सजल नेत्रों को नीचे झुका देती है!

दिव्य-स्वातन्त्र्य : २०२

जहाँ हृदय में निर्भयता है और मस्तक अन्याय के सामने नहीं
झुकता ;
जहाँ ज्ञान का मूल्य नहीं लगता;
जहाँ संसार घरों की संकीर्ण दीवारों में खण्डित और विभक्त
नहीं हुआ;
जहाँ शब्दों का उद्भव केवल सत्य के गहरे स्रोत से होता है;
जहाँ अनर्थक उद्यम पूर्णता के आलिंगन के लिए ही भुजायें
पसारता है;
जहाँ विवेक की निर्मल जल-धारा पुरातन रूढ़ियों के मरुस्थल
में सूखकर लुप्त नहीं होगई;
जहाँ मन तुम्हारे नेतृत्व में सदा उत्तरोत्तर विस्तीर्ण होने वाले
विचारों और कर्मों में रत रहता है;
प्रभु ! उस दिव्य स्वतन्त्रता के प्रकाश में मेरा देश जाग्रत हो !

प्रहार करो : २०३

मेरी यही भावना है—प्रभु ! प्रहार करो, प्रहार करो, मेरी दीनता के मूल पर मेरे हृदय में प्रहार करो।
शक्ति दो, कि मैं सुख-दुख के आघात को समभाव से सह सकूँ !
शक्ति दो, कि मैं अपने प्रेम को सेवा में फलित कर सकूँ ?
शक्ति दो, कि मैं दीनों को अपनाऊँ और निष्ठुर सत्ता के सामने कभी मस्तक न झुकाऊँ !
शक्ति दो, कि मैं नित्य के छोटे संघर्षों से अपने मन को मलिन न होने दूँ !
शक्ति दो, कि मैं तुम्हारी आज्ञा के आगे अपनी सत्ता को प्रेम से समर्पित कर सकूँ !

संकल्प : २०४

प्राणों के प्राण ! मैं अपनी देह को निर्मल रखूँगा, क्योंकि मेरे अंग-अंग पर तेरा स्पर्श है !

अपने विचारों को असत्य से धूमिल न होने दूँगा; क्योंकि तूने सत्य के दीपक से मेरे विवेक को प्रकाशित किया है !

मैं अपने हृदय में पापों का प्रवेश न होने दूँगा, क्योंकि वहाँ तेरी मूर्ति प्रतिष्ठापित है !

मेरे सब कार्यों में तेरी ही अभिव्यक्ति होगी, तेरी ही प्रेरणा होगी !

प्रियतम ! एक क्षण मुझे अपने पास बैठने का अवकाश
दे दे ! अपने हाथ के काम मैं बाद में निपटा लूँगा ।

जब आँखों से ओझल हो जाता है, मुझे न शांति मिलती है,
न विश्राम मिलता है ।

मेरा समस्त कार्य-भार तटहीन सागर की तरह विशाल और
दुरूह बन जाता है ।

आज मेरे आँगन में अपने गर्म उच्छ्वासों के साथ बसन्त
आया है । आज मधुमक्खियाँ कलियों के कानों में मधुर
स्वर से गुनगुना रही हैं ।

जी चाहता है—तेरे सामने चुपचाप बैठा रहूँ, और निर्बाध
अवकाश के साथ जीवन के पूर्ण समर्पण का गीत गाता
रहूँ !